योगविद्या

वर्ष 14 अंक 8
अगस्त 2025

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरि: ॐ

योगविद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

© Bihar School of Yoga 2025

उपयोगी संसाधन

वेबसाइट :

www.biharyoga.net
www.sannyasapeeth.net
www.satyamyogaprasad.net

एप्प : (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)
Bihar Yoga
APMB
YOGA (अंग्रेजी पत्रिका)
YOGAVIDYA (हिन्दी पत्रिका)
FFH (For Frontline Heroes)

कुल पृष्ठ संख्या : 56 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर: योग तारावली सत्संग

प्लेट: वेद पारायण

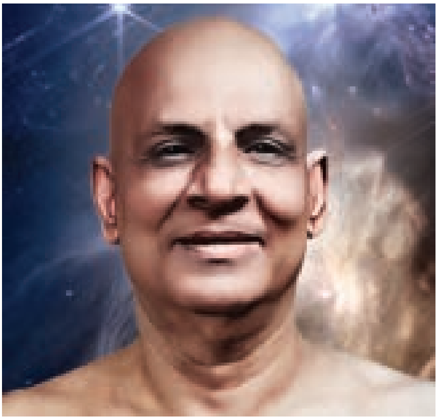

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

आत्म-विचार

योग के साधक को समुचित आदतों और मनोवृत्तियों का विकास करना चाहिए। उसे हर सांसारिक कामना और महत्त्वाकांक्षा को आत्म-विचार, आत्म-चिंतन और आत्म-विश्लेषण की कसौटी पर कसना चाहिए। उसे छलिये मन से कहना चाहिए – हे मन! मैं तुम्हारी चालाकियाँ समझ चुका हूँ। अब मेरे भीतर विवेक और वैराग्य जागृत हो चुका है। मैंने अनेक सबक सीखे हैं। केवल अज्ञान की वजह से मनुष्य परम कल्याण के बदले तुच्छ सांसारिक भोगों के पीछे भागता है। मुझे अब ये विषय भोग नहीं चाहिए। मैंने योग के अमूल्य फल यानि शाश्वत शांति और परमानन्द को प्राप्त करने का दृढ़ संकल्प कर लिया है।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी शिवध्यानम् सरस्वती द्वारा प्रकाशित
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 14 अंक 8 अगस्त 2025
(प्रकाशन का 63वाँ वर्ष)

विषय सूची

2 स्वयं को जानो
6 विचार विज्ञान
10 आध्यात्मिक प्रगति
14 आत्म-निरीक्षण
19 नाद और प्राण
25 विचार-संयम
30 योग और त्याग
32 आत्मा का स्वरूप
38 अध्यात्म संस्कार साधना

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

स्वयं को जानो

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

जब यह कहा जाता है कि स्वयं को जानो तो उसका क्या मतलब होता है? क्या यह मात्र एक दार्शनिक विचार है कि मैं आत्मा हूँ जो परमात्मा का अंश है – *ममैवांशो जीवलोके जीवभूत: सनातनः*? क्या इस फिलॉसफी को लेकर चलें अपने को जानने के लिये? नहीं, अपने को जानने के लिये जीवन की व्यावहारिकता को समझने का प्रयास करो। अपने को जानने के लिये ईश्वर को जानने का प्रयास मत करो, पहले अपने को समझने का प्रयास करो।

जब मनुष्य योग और साधना की पद्धति से जुड़ता है तब अपने पूर्वाग्रहों, दुराग्रहों, आदतों, स्वभाव, अपेक्षाओं और कामनाओं के साथ जुड़ता है। क्या हर व्यक्ति का समझने या जानने का एक ही तरीका है? विकास की सीढ़ी पर तो हम लोग अलग-अलग सोपानों पर खड़े हैं। सब लोग एक स्तर पर नहीं हैं। कोई अच्छा है, कोई कम अच्छा है, कोई ज्यादा अच्छा है। किसी की सोच बेहतर है, किसी की सोच थोड़ी कम है, किसी की सोच निकृष्ट है। अगर हम एक ही सोपान पर खड़े होते तो सबका चिन्तन, व्यवहार और आचरण एक ही प्रकार का होता। लेकिन ऐसा नहीं है और जो सीमित करने का कारण है, वह है मनुष्य की अपनी सजगता।

हम अपने आपको समझने के लिये अपनी सजगता का उपयोग नहीं कर पाये हैं। अपने जीवन में कोई भी मनुष्य दोष नहीं देखता है। अगर कोई कहे कि तुम्हारे जीवन में हम यह दोष देख रहे हैं तो वह आदमी जिन्दगी भर के लिये शत्रु बन जाता है – तुम कौन होते हो मेरे दोष को देखने वाले। व्यक्ति उसे एक सकारात्मक सलाह के रूप में नहीं लेता, बल्कि एक आक्रमण के रूप में देखता है। हम खुद को नहीं देख पाते हैं, दूसरा हमको देखता है। अगर हम खुद को देख सकें तो हमारे जीवन के जो दोष हैं, उन्हें हम खुद दूर करना चाहेंगे, सुधार लाना चाहेंगे।

अपने को जानने के लिये करना क्या है? इस दिशा में एक सरल विधि है स्वॉन सिद्धान्त की। अपने जीवन की प्रतिभाओं, कमजोरियों, महत्त्वाकांक्षाओं और जरूरतों को समझने का प्रयास करो। ईश्वर को समझने का प्रयास अभी मत करो। आत्मा को समझने का प्रयास भी मत करो अभी। पहले अपने

जीवन में शान्ति और व्यवस्था को लाओ, और उसके लिये चार पन्ने लेकर बैठ जाओ। यह व्यावहारिक सूत्र बतला रहा हूँ। पहले पन्ने पर जो भी तुम्हारी प्रतिभाएँ हैं, चाहे वह आत्मविश्वास हो, साहस हो, मानसिक स्पष्टता हो, उन्हें नोट कर लो। ईमानदारी के साथ, बनावटी नहीं। इस प्रकार अपने जीवन के जो सामर्थ्य और प्रतिभाएँ हैं, जिन्हें तुम सहज रूप से अभिव्यक्त कर रहे हो, उनकी सूची पहले बनाओ।

दूसरी सूची बनाओ अपनी कमजोरियों की, जैसे, भय, असुरक्षा, हीनता, आलस्य आदि। लोगों के सामने जाने में हम जो हिचकिचाते हैं, डर लगता है, दूसरों के दबाव को झेल नहीं पाते, अपने विचारों को स्पष्टता से अभिव्यक्त नहीं कर पाते, गुस्सा आता है – मतलब जो भी तुम्हारी कमियाँ हैं, सबको दूसरे पन्ने पर लिख दो।

तीसरे पन्ने पर अपनी महत्त्वाकांक्षाएँ लिखो, और देखने का प्रयास करो कि कौन-सी प्राप्य हैं और कौन-सी अप्राप्य। सामान्य रूप से आदमी तौलता नहीं है कि क्या प्राप्य है और क्या अप्राप्य, उसे तो जो विचार आता है उसके पीछे भागता है, उसे प्राप्त करने की कामना करता है। जब हम किसी अप्राप्य चीज को चाहते हैं और वह नहीं मिलती है तो निराशा और विषाद का सामना होता है।

आप लोगों ने शायद अपने भूतपूर्व राष्ट्रपति, श्री ए.पी.जे. अब्दुल कलाम जी की आत्मकथा – 'ऑन दी विंग्स ऑफ फायर' पढ़ी होगी। उसमें अब्दुल

कलाम जी ने स्वामी शिवानन्द जी के साथ अपने सम्बन्ध की चर्चा की है। मैं आपको यह उदाहरण इसलिए दे रहा हूँ कि इसमें एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण बिन्दु निहित है। अब्दुल कलाम जी कहते हैं कि जब मैं भारतीय वायुसेना में भर्ती नहीं हो पाया तो बहुत निराश होकर देहरादून से ऋषिकेश आया। दुविधा में था कि घर वापिस जाऊँ या नहीं। उस समय स्वामी शिवानन्द जी का दर्शन हुआ। वे स्नान करने के लिये गंगा तट पर जा रहे थे। उन्होंने पूछा, 'बेटा, तुम इतने सबेरे यहाँ क्यों बैठे हो, क्या कर रहे हो?' अब्दुल कलाम जी ने कहा, 'स्वामीजी, चिन्ता है, परेशानी है।' स्वामीजी ने कहा, 'बाद में आकर मुझ से मिलना, अभी मैं स्नान करने जा रहा हूँ।'

कुछ देर बाद जब स्वामीजी का सत्संग चल रहा था, तब अब्दुल कलाम जी उस सत्संग में गए। स्वामी शिवानन्द जी का नियम था कि सत्संग देते थे, उसके बाद चार-पाँच आदमियों को बुलाते थे और उन्हीं से उनका व्यक्तिगत साक्षात्कार एवं परामर्श होता था। उस बार उन्होंने अब्दुल कलाम जी को बुलाया और पूछा कि आखिर क्या हुआ जिसके कारण तुम इतने निराश हो। तब उन्होंने अपनी कहानी सुनाई।

कहानी सुनने के बाद स्वामी शिवानन्द जी केवल दो वाक्य कहते हैं। 'बेटा, इस विफलता के बारे में चिंता मत करो। यह मानकर चलो कि भगवान ने तुम्हारे लिये कुछ दूसरा ही निश्चित किया है।' यह पहली बात थी। दूसरी बात उन्होंने यह कही कि 'तुम्हारे भीतर जो पराजय की भावना आ गई है, उसे तुम पराजित करो।' गीता में भी श्रीकृष्ण ने अर्जुन को यही संदेश दिया

था। तुम अभी अपने आपको पराजित देख रहे हो, पराजय की इस भावना को पराजित करो, तभी तुम युद्ध कर पाओगे। जब तक तुम्हारे मन में 'मैं पराजित हो गया हूँ' का भाव रहेगा, तुम कभी सफल नहीं हो पाओगे।

पराजय की भावना को पराजित करो – इससे बढ़कर सामर्थ्य, क्षमता और पुरुषार्थ क्या हो सकता है? धन-सम्पत्ति तो मनुष्य कमा सकता है, लेकिन पराजय की भावना जो मन में एक बार आ जाती है, क्या तुम कभी इसे पराजित कर पाये हो? नहीं, और क्यों? महत्त्वाकांक्षाओं के कारण।

जब महत्त्वाकांक्षाएँ पूरी नहीं होती हैं, तब हम जीवन से हार मान लेते हैं। हारे नहीं हैं, लेकिन एक बार जब हार का विचार आ जाता है तो हम सच में हार जाते हैं। उसके बाद अगर भगवान भी आकर उठाने का प्रयास करेंगे, तो भी हम रोते ही रहेंगे कि मैं तो हार गया हूँ। यह होता है महत्त्वाकांक्षाओं के कारण।

महत्त्वाकांक्षा जरूर होनी चाहिये क्योंकि उसी से तो प्रेरणा मिलती है, लेकिन यह भी जानना चाहिये कि प्राप्य क्या है, और अप्राप्य क्या है। जो अप्राप्य है, उसके लिये परेशान होने की आवश्यकता नहीं और जो प्राप्य है, उस पर पूर्ण ध्यान देकर उसे पूरा करो।

चौथी चीज, एक सूची बना लो कि मेरी आवश्यकताएँ क्या हैं? घर, परिवार, शरीर, मन की क्या आवश्यकताएँ होती हैं? इस प्रकार अपनी आवश्यकताओं की सूची बना लो और उसमें देखो कि हम किसे प्राथमिकता दें। जब तक मनुष्य सोचता नहीं है, वह सब चीजों को बराबर का महत्त्व देता है और अंत में किसी को सिद्ध नहीं कर पाता है।

अपने जीवन को बेहतर बनाने के लिए इस विधि को प्रयोग में लाओ। अपने सामर्थ्यों, कमजोरियों, महत्त्वाकांक्षाओं और आवश्यकताओं की पहचान करो। हमारे परम गुरुदेव, स्वामी शिवानन्द जी के निर्देशानुसार प्रत्येक महीने एक सामर्थ्य को और भी मजबूत करो। प्रत्येक महीने एक कमजोरी का निर्मूलन करो, उस कमजोरी को अपनी प्रतिभा में बदल दो। प्रत्येक महीने अपने प्राप्य लक्ष्यों का विश्लेषण करो। और प्रत्येक महीने देखो कि मेरे जीवन की जो आवश्यकताएँ थीं, उन्हें मैंने कितना पाया है।

इस प्रकार अगर प्रत्येक महीने एक-एक बिन्दु को लेकर चलोगे तो बारह महीनों में तुम बारह कमजोरियों पर विजय प्राप्त कर लोगे, बारह सामर्थ्यों को प्राप्त करोगे और अपने जीवन को व्यवस्थित एवं संतुलित बना पाओगे। उसी से तुम्हारी दिव्य जीवन की यात्रा आरम्भ होगी।

विचार विज्ञान

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

'आप जैसा सोचते हैं, वैसे ही बन जाते हैं' – यह सूक्ति सत्य और सही है। आप स्वयं को स्वस्थ मानें, आप स्वस्थ बन जायेंगे। आप अपने को दुर्बल मानें तो दुर्बल बन जायेंगे। आप खुद को विद्वान्, महात्मा या परमात्मा मानें, तो वैसे ही बन जायेंगे। इनसे अलग कुछ मानें, तो मूर्ख, दुरात्मा और जीव ही बने रहेंगे। विचारों से ही मनुष्य बनता और बिगड़ता है। हर व्यक्ति का अपना एक वैचारिक जगत् होता है, जिसमें वह निवास करता है। संकल्प में अद्भुत शक्ति है, आप इससे आश्चर्यजनक काम कर सकते हैं। आपने भूतकाल में

जैसा सोचा था, आज आप उसी का मूर्त रूप हैं। आज जो कुछ आप सोच रहे हैं, आपका भविष्य उसी से बन रहा है। यदि आप मन, वचन और कर्म से सच्चे हैं, तो आपका भविष्य उज्ज्वल है। यदि आप सच्चे नहीं हैं, तो उसका उत्तरदायित्व आप पर है।

बुरे विचार मन में कैसे घर करते हैं, इनका सामना कैसे किया जाये? बुरे विचारों से आप ऊबते प्रतीत होते हैं। ये आपको अप्रिय लगते हैं। बस, यही तो आपकी आध्यात्मिक प्रगति की पहचान है। बहुतों को इसकी परख नहीं होती। बहुतों का मन इतना अस्त-व्यस्त और सांसारिक दूषणों से ग्रस्त होता है कि उनके लिए मन का सन्तुलन बनाये रखना असंभव हो जाता है। बहुतों की मानसिक प्रवृत्तियाँ इतनी उच्छृंखल होती हैं कि उन्हें नियंत्रित करके वे शुद्ध विचारों को ग्रहण नहीं कर पाते। बहुत लोगों को बुरे विचारों से परेशानी नहीं होती। कारण कि उनके मन में इस प्रकार के विचार विरल होते हैं, वे आते हैं, चले जाते हैं, ज्यादा क्षति नहीं पहुँचाते।

पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक और रहस्यवादी, विचारों की पवित्रता पर बहुत जोर देते हैं। विचार-विज्ञान भी अपने आप में एक विषय है। आपको उत्तम विचारों से सम्पन्न होना चाहिए तथा निम्न विचारों से पीछा छुड़ाना चाहिए। यदि आप निकृष्ट विचारों की सृष्टि करते हैं, तो अपना और सारे विश्व का अहित कर रहे हैं। आप विचारों के जगत् में विषाणु फैला रहे हैं। आपके अपावन विचारों से अन्य लोग भी प्रभावित होते हैं, क्योंकि विचारों का भी संचरण होता है, वे भ्रमण करते हैं और जन-मानस को प्रभावित करते हैं। बुरे विचारों से अनेक रोग और शोक उत्पन्न होते हैं, इससे सारे संसार को क्षति पहुँचती है। इसलिए आप मन को उत्तम विचारों से भरें तथा अपना और अपने चारों ओर के जगत् का हित करें। आपके उत्तम विचारों से चारों ओर आनन्द, उल्लास, आश्वासन और सुख-शान्ति का साम्राज्य फैलेगा।

अपने मन को बड़ी सतर्कता से परखिए। आपके मन में राग-द्वेष, विक्षेप, घृणा आदि के भाव अपना सिर न उठा सकें। धारणा, ध्यान और प्रतिपक्ष-भावना के अभ्यास द्वारा उन्हें परास्त करते रहिए। प्रारम्भ में तो शुभ और अशुभ विचारों में परस्पर संघर्ष छिड़ता है। शुभ विचारों की परिधि में अशुभ विचार धीरे से प्रवेश कर लेता है। पहले वह खुशामद-मिन्नत करके थोड़ी-सी जगह घेरता है और फिर अपना विस्तार करना शुरू करता है। वह धीरे-धीरे मन को सांसारिक चीजों में फँसाता है, फिर उसे पूरी तरह से सांसारिक बना लेता है।

प्रतिपक्ष-भावना के माध्यम से अशुभ विचारों के स्थान पर शुभ विचारों को आश्रय दीजिए। यह राजयोग की पद्धति है। अशुभ विचारों की जगह शुभ विचार ले लेते हैं, और किसी तरह के द्वन्द्व के बिना आपका मन्तव्य पूरा हो जाता है। मन से बुरे विचारों को 'खदेड़कर निकालना' बहुत कठिन है। तरीका यही है कि उत्तम विचारों को मन में आने दीजिए, हीन विचारों का कारवाँ अपने-आप अन्यत्र कूच कर जाएगा। इसके लिए आपको लगन, अभ्यास और अध्यवसाय की जरूरत पड़ेगी।

मन की चंचल अवस्था में किसी महापुरुष, देवी या देवता को लक्ष्य बना लेना चाहिए और बार-बार उन्हीं पर मन को टिकाना चाहिए। मन बहुत उछल-कूद मचाकर वहीं पहुँचेगा और कुछ काल के लिए शान्त रहेगा। शान्ति की यह अवधि धीरे-धीरे बढ़ेगी और अन्त में आपका उच्छृंखल मन हमेशा के लिए शान्त हो जाएगा। आप शान्ति-स्वरूप परमात्मा का सान्निध्य प्राप्त कर सकेंगे।

अपने मन को स्वयं उपदेश भी दिया जा सकता है। किसी महापुरुष को अपना पथ-प्रदर्शक निर्धारित कीजिए और अपने मन को उनके बताये आदर्शों पर चलने का आदेश दीजिए। यह प्रणाली मन को वशीभूत करने में सहायक होगी। मान लीजिए, किसी ने आपका कुछ अहित कर दिया। आप उससे तुरन्त बदला लेना चाहेंगे। अपने मन को अगर इस समय समझाया जाए कि क्षमा बहुत बड़ा नैतिक गुण है, तो यह समझने से रहा। अतः आप ऐसा मत कीजिए। मन को इस प्रसंग से मोड़ने की कोशिश कीजिए। कुछ उपदेश मत दीजिए, सिर्फ अच्छे आदर्श सामने रखिए। महापुरुषों का स्मरण कीजिए और उनके आदर्शों का अनुशीलन कीजिए। बार-बार मन को उन पर लाइए और आप देखेंगे कि आपका मन हिंसात्मक विचारों को छोड़ चुका है।

आप बुरी संगति में रहते हों तो यह संगति छोड़ दीजिए। यदि आप अतीत में बुरे कर्मों में पड़ चुके थे तो उनके बारे में अब सोचना व्यर्थ है। मन को अच्छे लक्ष्य के विषय में समझाइये और उसे अच्छे मार्ग पर लाइए। आत्मानुशीलन, सत्संग, सद्विचार आदि के माध्यम से मन का परिष्कार कीजिए। आपका अतीत आपके लिए बन्धन नहीं है। आप पहले कुछ भी रहे हों, अभी चाहें तो महामानव बन सकते हैं।

अपना उद्देश्य स्पष्ट रूप से सामने रखिए। आपके मार्ग में जो बाधक तत्त्व हों, उन्हें पहचान लीजिए और उनसे सावधान रहिए। तमोगुण को रजोगुण से

और रजोगुण को सत्त्वगुण से जीतिए। काम, क्रोध और मोह को प्रेम, क्षमा और विवेक से जीतिए।

सुसंगति में रहिए। बातचीत बहुत थोड़ी कीजिए। बहिर्मुखता कोई अच्छा गुण नहीं है। विचारवान् पुरुष सदा अन्तर्मुखी होते हैं। ज्यादा मिलना-जुलना या अनावश्यक दोस्ती बढ़ाना जीवन का जंजाल है। एकान्तप्रियता एक उत्तम गुण है। ज्यादा दोस्ती से बहुत परेशानियाँ ही पैदा होती हैं। वैसे अपने पास-पड़ोस वालों से अच्छा सम्बन्ध रखना उचित है। आपसे उनको जरूरत पड़ सकती है, उनसे आपको जरूरत पड़ सकती है। संसार में इतना तो सम्बन्ध रखना ही पड़ता है, लेकिन किसके साथ घनिष्ठ और किसके साथ परिचयात्मक सम्बन्ध रखा जाता है, यह भी सोचने का विषय है। अतः आपको विवेकशील होना पड़ेगा, साथ-ही आपकी एकान्तप्रियता और गंभीर मनोवृत्ति में खलल न पड़े, यह भी सोच लीजिए।

बहुत एकान्तप्रियता भी किसी-किसी को मँहगी पड़ती है। इसलिए धार्मिक सत्संग में जाना अच्छा है। कुछ मार्गदर्शन मिलता रहता है। अन्यथा भय है कि किसी एक विचार को पकड़ कर आप बैठे हों, जो आपके लिए उपयोगी न हो तथा इसके बदले कोई अन्य विचार भी नहीं मिलता है। इसके लिए सदाचारनिष्ठ व्यक्तियों से मिलना-जुलना तथा आध्यात्मिक सत्संग का सेवन करना बहुत आवश्यक है।

आध्यात्मिक प्रगति

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

अनेक लोग प्रश्न पूछते हैं कि आध्यात्मिक साधक अपनी उन्नति और विकास को कैसे मापे? व्यक्ति यह कैसे जाने कि वह यौगिक या आध्यात्मिक जीवन में प्रगति कर रहा है? सामान्यतया इसका उत्तर दिया जाता है कि जब तुम्हारी इच्छाएँ और वासनाएँ कम होने लगें, जब मन की लालसाएँ और आवश्यकताएँ उग्र रूप धारण न करें, वे शांत और नियन्त्रित हो जाएँ, तब समझो कि तुम इस मार्ग में प्रगति कर रहे हो। तुम्हें यह निर्णय स्वयं करना है कि वह इच्छा, जरूरत या चाहत तुम्हारी वास्तविक आवश्यकता है या केवल आत्म-सन्तुष्टि के लिए महत्त्वाकांक्षा है। फिर तुम अंदाज लगा सकते हो कि तुम्हारी इच्छाएँ कम हुई हैं या बढ़ी हैं। अनेक साधकों के अनुसार, जो इस प्रक्रिया से गुजरे हैं, यह आध्यात्मिक प्रगति का एक सटीक संकेत है। इसलिए इच्छाओं का क्षीण होना इस प्रश्न का प्रचलित उत्तर है। महात्मा बुद्ध ने यही कहा, स्वामी शिवानन्द जी ने भी यही कहा और स्वामी सत्यानन्द जी ने भी यही कहा है।

जब संसार के प्रति इन्द्रियों और मन के माध्यम से होने वाली लालसाएँ, आसक्तियाँ और आकर्षण कम हो जाते हैं, तब इससे व्यक्तित्व के एक विशेष स्तर का संकेत मिलता है जहाँ तुम आन्तरिक रूप से स्वयं के प्रति अधिक सजग हो जाते हो। फिर भी तुम यह कैसे जानोगे कि तुम प्रगति कर रहे हो या नहीं? मेरी समझ में स्वयं का अवलोकन करने के लिए सबसे अच्छा तरीका यह है कि अपने जीवन को तीन भागों में बाँट लिया जाए। जन्म से लेकर मृत्यु तक के जीवन काल को तीन हिस्सों में बाँटना है। यह मत सोचना कि मैं जन्म से मृत्यु तक की उम्र के विषय में बात कर रहा हूँ, बल्कि यह तो पूरे जीवन काल के अनुभवों का तीन समूहों में वर्गीकरण है।

जीवन का पहला भाग – इन्द्रियों और मन का प्रशिक्षण

तुम्हारे जीवन का एक तिहाई भाग तो उन अनुभवों से संबंधित है जो तुम अपनी इन्द्रियों और मन से प्राप्त करते हो। तुम्हारे सभी अभ्यास, प्रयास, इच्छाएँ और आकांक्षाएँ इन्द्रियों और मन की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। यहाँ मन का अभिप्राय सम्पूर्ण अन्त:करण से है – मनस्, बुद्धि, चित्त और अहंकार।

तुम जो भी सोचते या करते हो, वह केवल अपने लिए होता है क्योंकि तुम इसी आत्म-केन्द्रित तुष्टि और अनुभूति की खोज कर रहे हो। तुम चाहे किसी योग कक्षा में जाओ या आध्यात्मिक संगोष्ठी में या धार्मिक उत्सव में, या व्यक्तिगत अभ्यास करो, जीवन के पहले भाग में तुम सब कुछ अपनी भलाई के लिए ही करते हो। तुम हर चीज का इस्तेमाल अपनी उन्नति, प्रसन्नता, सन्तुष्टि और इच्छापूर्ति के लिए करते हो, जीवन में सफलता पाने के लिए करते हो।

इस अवस्था में जब तुम आध्यात्मिक जीवन और उसमें सफलता पाने के विषय में सोचते हो, तो तुम्हारी इन्द्रियाँ और मन आध्यात्मिक जीवन से कैसा सम्बन्ध रखते हैं, यह मायने नहीं रखता। यह केवल एक पक्ष है, जिसे नियंत्रित करके संयम की छत्र-छाया में ले आना है। जिस दिनचर्या, अनुशासन और साधना का तुम पालन करते हो, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार और धारणा का जो अभ्यास करते हो, जिन यम-नियमों का पालन करते हो, उनका उद्देश्य यही होना चाहिए कि तुम अपनी इन्द्रियों और मन पर नियंत्रण पा सको।

जब तक तुम इस अवस्था तक नहीं पहुँच जाते, तब तक मन के गहन, आध्यात्मिक क्षेत्रों में प्रवेश की बात सोचनी भी नहीं चाहिये, क्योंकि तुम बार-बार अपने स्थूल स्वभाव की ओर खींचे जाते रहोगे। ध्यान में तुम शान्ति और सामंजस्य प्राप्त करने का प्रयास कर रहे होगे, और अचानक क्रोध,

अवसाद, ईर्ष्या, लोभ या घृणा की कोई भावना उभरकर आयेगी जो तुम्हारे मन को अभिभूत कर देगी। तब ध्यान का केन्द्र बिन्दु कोई शान्तिप्रद विषय होने की बजाय वह चिंताजनक विचार बनकर रह जाएगा। ध्यान में तुम उस नकारात्मक विचार को छोड़ने की बजाय उस पर योजनाएँ बनाना प्रारंभ कर दोगे। यह दर्शाता है कि तुम चाहे कोई भी अभ्यास क्यों न करो, जब तक तुम संयम प्राप्त करके इन्द्रियों और मन के अनुभवों को पार नहीं कर जाओगे, तब तक आध्यात्मिक सजगता की प्राप्ति कठिन है। अतः साधना का पहला प्रयास इन्द्रियों और मन पर स्वामित्व की प्राप्ति होना चाहिये। इसलिए जीवन के पहले भाग में, योग चक्र के पहले पक्ष अर्थात बहिरंग योग को अपनाया जाना चाहिये।

जीवन का दूसरा भाग – व्यक्तित्व का परिवर्तन और रूपान्तरण

जीवन का दूसरा भाग अन्तर्मन और भावनाओं से सम्बंधित है? भावना क्या है? गतिशील ऊर्जा, जो किसी भी बाह्य या आन्तरिक चीज से जुड़ सकती है, और एक बार यह ऊर्जा किसी चीज से जुड़ जाती है तो यह एक विशिष्ट भाव को जन्म देती है। अन्तर्मन में भाव के अतिरिक्त संस्कारों का आयाम भी है, जो जीवन के निर्माता हैं।

तुम नहीं जानते कि तुम्हारे संस्कार क्या हैं, तुम्हारी आदतें क्या हैं। तुम केवल उन आदतों को देख पाते हो जो बाह्य और शारीरिक हैं। लेकिन आदतें तो ऐसी बंधनकारी स्थितियाँ हैं, जो मन में पहले से विद्यमान हैं और जिनके प्रति तुम सजग नहीं हो। संस्कार तुम्हारे भीतर पहले से ही अवस्थित स्थितियाँ हैं जिनके प्रति तुम सजग नहीं हो। जब ये संस्कार इन्द्रियों और मन के क्षेत्र में स्वयं को अभिव्यक्त करते हैं, केवल तभी तुम उनके प्रति सजग हो पाते हो।

जीवन के दूसरे भाग में अपने भावों और संस्कारों से निपटने के लिए तुम्हें योग चक्र के दूसरे पक्ष, अन्तरंग योग में प्रवेश करना होगा। एक बार तुम अन्तरंग योग में प्रवेश कर जाते हो तो तुम्हारा व्यक्तित्व परिवर्तित हो जाता है, व्यवहार बदल जाते हैं, और तुम आध्यात्मिक बनने के साथ-साथ व्यावहारिक भी बन जाते हो।

यदि तुम आध्यात्मिक तो हो पर व्यावहारिकता में कमी है, तो कहीं कुछ गलत है, क्योंकि आध्यात्मिकता में लापरवाही, गैर-जिम्मेदारी, सनक और पागलपन स्वीकार्य नहीं है। मैं नहीं जानता कि क्यों पागलों जैसे सनकी

व्यवहार की तुलना आध्यात्मिक व्यवहार से की जाती है। पागलपन अध्यात्म नहीं है। बहुत ज्यादा भावुक और संवेदनशील होना भी आध्यात्मिकता नहीं है। अपने व्यवहार में बहुत सख्त और कठोर होना, दूसरों से अलग-थलग रहना भी आध्यात्मिकता नहीं है। आध्यात्मिकता का मतलब जीवन में व्यवाहारिक लचीलापन होना, और तुम्हें आध्यात्मिकता को इसी दृष्टिकोण से देखना चाहिये। जिस प्रकार पानी अपने पात्र के आकार का विरोध किये बिना उसी के आकार में ढल जाता है, उसी तरह हमें प्रत्येक परिस्थिति में लचीला होना चाहिये। यह एक गोल छेद में चौकोर खूँटी को जबरदस्ती फिट करने जैसा नहीं है, बल्कि आध्यात्मिकता तो पानी की तरह है, इसे जिस भी पात्र में डालोगे यह उसी पात्र का आकार और स्वरूप ग्रहण कर लेगी। इसलिए सनकी व्यवहार को आध्यात्मिकता के साथ मत जोड़ो।

व्यक्ति को जीवन में यथार्थवादी और व्यावहारिक होना चाहिये। यह तभी संभव है जब अपने जीवन के दूसरे भाग में तुम अपने आन्तरिक व्यक्तित्व को सही ढंग से व्यवस्थित करने पर अपने प्रयास केन्द्रित करोगे। इस प्रकार अपने जीवन के दूसरे भाग में तुम भावनाओं और संस्कारों का अन्तरंग योग के माध्यम से प्रबन्धन करते हो।

जीवन का तीसरा भाग – योग चक्र के प्रकाश में विलय

जीवन के तीसरे भाग में व्यक्ति एकत्व के अनुभव में जीता है और यह योग चक्र का ज्योतिर्मय विलय है। इस ज्योतिर्मयी स्थिति में तुम्हें शान्ति, स्पष्टता, विश्रान्ति और आत्म-भाव की प्राप्ति होती है। आत्म-भाव का अर्थ है खुद को दूसरों में देख पाना, जो दर्शाता है कि द्वैतभाव, माया और भ्रम दूर हो चुके हैं। आत्म-भाव को समझने के लिए तुम्हें श्री स्वामीजी के इन शब्दों को समझना होगा – 'अगर तुम यह पहचान सको कि जो अन्तरात्मा तुम्हारे भीतर विद्यमान है, वहीं अन्य सभी में भी विराजमान है और तुम उसे वही आदर एवं सम्मान दे सको, तब यह आत्म-भाव की स्थिति है।'

ये केवल आध्यात्मिक सिद्धान्त या विचार नहीं हैं, ये आध्यात्मिक प्रगति को दर्शाते हैं। इसी प्रगति पर गंगा दर्शन विश्व योगपीठ आने वाले वर्षों में अपना ध्यान केन्द्रित करेगी। समाज के समक्ष योग शिक्षा को एक नये कलेवर में लाने के पूर्व योगपीठ आगामी वर्षों में इसी योग चक्र के विकास और शिक्षण पर जोर देगी।

आत्म-निरीक्षण

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

संसार में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं जो अपने को देख सकता है। हाँ, दूसरों को देखना सबको आता है। हमको मालूम है कि तुम्हारा चेहरा कैसा है, तुम्हारे बाल कैसे हैं, तुम्हारी नाक कैसी है, तुम कैसा बोलते हो, मीठा बोलते हो या कड़वा बोलते हो, अच्छा गाते हो या खराब गाते हो, हमको यह सब मालूम पड़ जाएगा, मगर तुमको खुद कभी मालूम नहीं पड़ेगा। यह सबके साथ है। दुनिया में जितने भी जीव हैं, इस मामले में सब अज्ञान में हैं। मनुष्य स्वयं कैसा है, इसकी जानकारी दूसरे से होती है। जैसे चेहरे की जानकारी दर्पण से होती है, वैसे ही तुम्हारे स्वभाव की जानकारी निन्दा करने वाले से होती है। जो

तुम्हारी आलोचना करता है, निन्दा करता है, वही तुम्हारे चेहरे का, स्वभाव का सही रंग बतलाता है। इसलिए कभी भी कोई कहे कि तुम ऐसा क्यों करते हो तो उस समय प्रतिकार नहीं करना चाहिए, न ही अपनी सफाई देनी चाहिए। कहना कि हाँ, ऐसा है, फिर उसका आत्म-निरीक्षण करना चाहिए।

आत्म-निरीक्षण के समय व्यक्ति को अपने मन को न्यायाधीश बनाना पड़ता है, अपने विवेक को जज बनाना पड़ता है, जो तुम्हारी तरफदारी न करे। वकील तरफदारी करता है, मगर जज तरफदारी नहीं करता, नहीं करनी चाहिए। अपनी तरफदारी नहीं करनी चाहिए। इसको कहते हैं स्व-आलोचना। ईसाई धर्म कहता है, 'अपनी आलोचना करो'। तुलसीदास जी ने भी कहा है 'मो सम को कुटिल खल कामी।' मतलब उन्होंने स्व-आलोचना को स्वीकार किया है। बहुत मुश्किल है अपना चेहरा देखना। जब दूसरे लोग तुम्हारी तारीफ करते हैं कि तुम बहुत सुन्दर हो, बहुत विनम्र हो, बहुत अच्छा गाते हो, बहुत अच्छा लिखते हो, बड़ा अच्छा स्वभाव है, बहुत अच्छे कार्यकर्त्ता हो, बहुत सज्जन हो, तो वह भी तुम्हारा चेहरा है। हाँ, मगर क्या होता है, जब तुम्हारी निन्दा की जाती है तब तुम्हारा चेहरा लटक जाता है, तुम अपने को बचाते हो, कहते हो, 'नहीं, नहीं, मैं कहाँ करता हूँ ऐसा।'

आलोचना और प्रशंसा

आलोचना करने पर आदमी अपना बचाव ही करेगा, लेकिन जब उसको बोला जाएगा कि तुम बहुत अच्छा गाते हो, उस वक्त वह फूल जाता है, अहंकार आ जाता है। आदमी की ये दो बहुत बड़ी समस्याएँ हैं, आलोचना में बचाव और प्रशंसा में अहंकार। अब जैसे तुम बहुत अच्छा गाती हो, लता मंगेशकर की तरह ही गाती हो और तुम्हें प्रशस्ति-पत्र मिल गया, पन्द्रह हजार रुपये का इनाम भी मिल गया, तुम्हारा नाम तक अखबार में छप गया, इन सबसे मद आता है, घमण्ड आता है। मगर उसके बाद आलोचना सुन कर अपने को बचाने की प्रवृत्ति आती है। और दोनों ही गलत हैं।

आदमी को दोनों जगह अलग रवैया रखना पड़ता है। इसमें सबसे बड़ी चीज है, चिन्तन और आत्म-निरीक्षण। अगर कोई कहे कि भाई! तुम बहुत अच्छा भाषण देते हो, बहुत अच्छा लिखते हो, बहुत अच्छा नेतृत्व है, तो अपने मन में सोचना चाहिए, 'हाँ, मानते हैं ऐसा होगा। मगर देखो, गाँधीजी में कैसा नेतृत्व था, तानसेन कैसा गायक था, महाराणा प्रताप कैसे योद्धा

थे, शिवाजी कैसे कूटनीतिज्ञ थे, हमारे में तो वैसा कुछ नहीं है, हमको तो और बढ़ना होगा। अब इसका उपाय क्या है?' आदमी को तारीफ में विनम्र होना चाहिए। बाहर से जो बोले सो बोले, लेकिन अन्दर भावना दूसरी होनी चाहिए। जब निन्दा होती है, आलोचना की जाती है, उस वक्त तुम्हारे मन में स्वीकृति आनी चाहिए, 'हाँ, वह सही है' और जब तुम्हारी प्रशंसा की जाती है उस वक्त स्वीकृति नहीं होनी चाहिए, उल्टा सोचना चाहिए कि 'ठीक है, स्कूल में इनाम मिल गया, पर इससे क्या होता है, दुनिया तो बहुत बड़ी है।' जैसे पेड़ फल लगने से लद जाता है, उसी प्रकार जो गुणवान् व्यक्ति होते हैं, वे गुणों के कारण दब जाते हैं। जो आदमी दबना जानता है, वह दुनिया पर राज करता है। कहते हैं जो दबता है, उसके अन्दर बहुत दम होता है। लेकिन यह जो मैं कह रहा हूँ, यह आसान नहीं है। यह एक बहुत कठिन चीज है। कबीरदास जी कहते थे –

निन्दक नियरे राखिए, आँगन कुटी छुहाय।
बिन साबुन पानी बिना, निर्मल करे सुहाय॥

जो तुम्हारी आलोचना करे, उसको तुम अपने कमरे में रखो, ताकि वह बिना पानी और साबुन के तुम्हारा कपड़ा साफ कर दे। तुमको डिटर्जेंट और पानी की जरूरत नहीं है। पर ऐसा होता नहीं है। आदमी हमेशा अपनी बुराई करने वाले को उपेक्षित करता है और अपनी तारीफ करने वाले को अपने कमरे में रखता है। दुनिया में सब जगह ऐसा ही होता है।

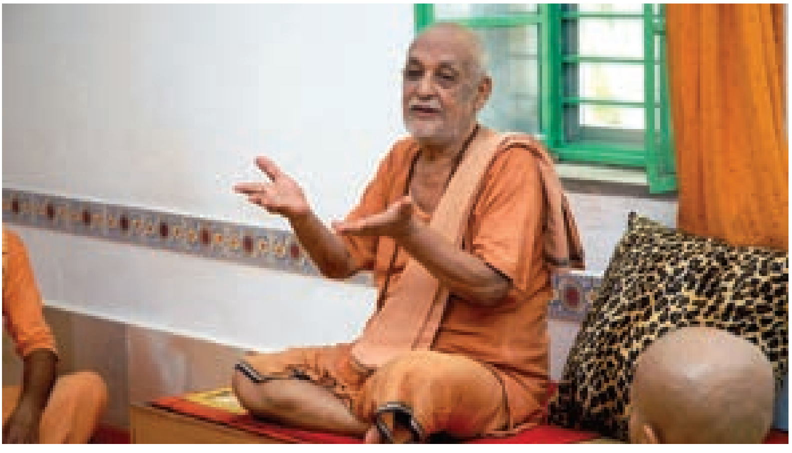

स्वयं को दूसरों के माध्यम से जानना

सुकरात कहता था – स्वयं को जानो। उपनिषद् में कहा है – *आत्मानं विजानीहि*। रमण महर्षि भी एक ही बात कहते थे। वे तो हिन्दी वगैरह कुछ नहीं जानते थे, जब भी कोई उनके पास उपदेश के लिए जाता था, वे कहते 'नान यार' – मैं कौन हूँ, यही विचार करो। अपने को जानो, अपने को पहचानो। अपने को पहचाने बिना ये चीजें बहुत कठिन हैं जीवन में। बहुत बार तुम परीक्षाओं से गुजरते हो। परिवार में, समाज में, संस्थाओं में बहुत परीक्षाएँ आती हैं। जहाँ भी जाओगे, चुनौतियों और परीक्षाओं को पाओगे।

आदमी को पहले अपना दोष देखना चाहिए। जब तुमको अपना दोष दिखेगा, तब तुमको पता चलेगा। दूसरे में दोष देखकर, फिर वही दोष अपने में खोजो।

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिल्या कोय।
जो दिल देखा आपना, मुझ सा बुरा न कोय॥

संत-महात्माओं ने तो पहले इसका प्रयोग किया है। दूसरे के दोष देखने की बजाय आदमी को अपने में दोष देखना चाहिए। लेकिन ऐसा होता नहीं है। अगर तुम अपने में बहुत ज्यादा दोष देखोगे तो तुम्हारा आत्म-विश्वास कम हो जाएगा। तुमको यही लगेगा कि मैं नालायक हूँ। इसलिए अपने में दोष देखना, यह प्राकृतिक नियम नहीं है। प्रकृति ने, स्वभाव ने एक नियम बनाया है कि अपना चेहरा अपने को नहीं दिखाई दे। प्रकृति ने यह नियम सबके लिए बनाया है। किसी भी व्यक्ति को अपने दोष, अपने दुर्गुण स्वयं खोजने पर नहीं मिलते। पहले तुम उन्हें दूसरे में देखते हो कि वह बहुत आलसी है, बहुत बोलता है, बड़ा अहंकारी है वगैरह। तब तुम उन दोषों का विश्लेषण करते हो कि घमण्ड क्या है, ईर्ष्या किसे कहते हैं। ये सब चीजें पहले दूसरों में अध्ययन करोगे। अपने में नहीं मिलेंगी, चाहे तुम लाख कोशिश करो। मैं यहाँ मौजूद हर एक व्यक्ति से खुले तौर पर कह सकता हूँ कि तुम कितनी भी कोशिश कर लो, तुमको अपने में कोई दोष मिलने वाला नहीं है। दोष तुमको दूसरे में ही मिलेगा।

यह प्रकृति का नियम है। पहले दूसरे में अध्ययन किया, तब तुमको अपने बारे में पता चला। तुमको कैसे पता कि आँख ऐसी होती है? तुमने दूसरे की आँख देखी, नाक देखी, होंठ देखे, बाल देखे, ललाट देखा, तब जाकर तुमको

पता चला कि मेरा भी ऐसा ही होता होगा। प्रकृति ने अपने को जानने के लिए दूसरे को बनाया है। दूसरा आदमी तुम्हारा दर्पण है। वह तुमको बताता है कि गुस्सा क्या होता है। तुमको क्या मालूम कि गुस्सा क्या होता है? तुमको तब मालूम पड़ेगा जब तुम्हारे सामने दूसरा आदमी खूब गुस्सा करेगा। तब तुम सोचोगे, 'यह बड़े गुस्से में है, अच्छा तो गुस्सा इसको कहते हैं। हमारे माता-पिता हमें बहुत प्रेम करते हैं, तो यह प्रेम है।' प्रेम क्या है, क्रोध क्या है, नफरत क्या है, यह तुम जिन किताबों से सीखते हो, वे किताबें हैं तुम्हारे आसपास के लोग। तब फिर उस दोष को अपने में ढूँढ़ना पड़ता है। इसके पहले अपने में बुराई खोजना गलत है। इसलिए पहले तुम दूसरे की निन्दा करते हो।

दूसरे की निन्दा करना एकदम स्वाभाविक है। यह मानवीय समझ के विकास-क्रम में प्रकृति का नियम है। अगर तुम शुरू से कहो कि हम नालायक हैं, तुमको तो यही नहीं मालूम कि नालायक किसको कहते हैं, खाली तुमने एक मत बना लिया कि हम नालायक हैं, किसी काम के नहीं हैं, बेकार हैं, बिना यह जाने कि इसका मतलब क्या है। इससे व्यक्तित्व को चोट पहुँचती है। हाँ, और ऐसे ही आदमी दूसरे की तारीफ भी करता है, वह बहुत सुंदर है, वह बहुत अच्छा गाती है, वह बहुत अच्छी है। लेकिन क्या तुमको मालूम है कि सुंदर क्या है? सुरीला स्वर क्या है? अच्छाई क्या है? पहले तुम जानो कि सुंदरता क्या है, संगीत क्या है, अच्छाई क्या है? तब वह तुम को अपने में मालूम पड़ेगा। नहीं तो मैं बहुत अच्छी हूँ, यह अहंकार हो गया। इसलिए जीवन को बनाने के लिए प्रकृति ने जो नियम बनाए हैं, उनको समझना चाहिए। कोई तुम्हारी आलोचना करता है, बुराई करता है, करने दो। चुप रहो। प्रतिकार मत करो। और जब तुम दूसरे की निन्दा करते हो, तब उस समय अपने में छानबीन करो कि कहीं मेरे में तो दोष नहीं है।

स्वयं को जानना दुनिया में सबसे मुश्किल चीज है। दुनिया में आदमी सब चीज जान सकता है, लेकिन अपने को नहीं जान सकता। अपने को जानना ही आत्म-साक्षात्कार है। यह सामान्य उपलब्धि नहीं है, बहुत ऊँची उपलब्धि है। हम लोगों को अभी यह उपलब्धि नहीं हुई है। हम लोग सब गप्प लगाते हैं कि आप बहुत अच्छे हैं, बहुत पहुँचे हुए हैं। स्वयं को जानना जीवन की महानतम उपलब्धि है। उपनिषदों ने इसे आत्मज्ञान कहा, किसी ने ईश्वर-साक्षात्कार कहा। स्वामी शिवानन्द जी कहा करते थे दोनों एक ही हैं, अपने को जानना और भगवान को जानना बराबर है।

नाद और प्राण

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

आदिगुरु शंकराचार्य द्वारा रचित योग तारावली नामक ग्रंथ में नाद की चर्चा आती है। नाद ही ॐ है, नाद ही प्रणव है, और उस नाद में अपने आप को विलीन कर देना योग की सर्वोच्च समाधि मानी गयी है। आदिगुरु शंकराचार्य के अनुसार नाद को सिद्ध करने के लिये सबसे पहले हठयोग में वर्णित प्राणायामों को सिद्ध करना आवश्यक है। प्राण के द्वारा ही हम अपने मन को शुद्ध कर सकते हैं, और जब मन की कलुषता समाप्त हो जाती है, तब कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होता है। योग साधना के द्वारा मन के व्यवहार को संभालना, मन की कलुषता को दूर करना, प्राणों को जागृत करना, और इसके साथ कुण्डलिनी का जागरण भी होना तथा कुण्डलिनी का चक्रों को पार करते हुए ऊर्ध्वगामी बनना – ये बहुत महत्त्वपूर्ण बातें हैं। जब कुण्डलिनी शक्ति अनाहत चक्र में आती है, जो हृदय का चक्र है, तब वहाँ पर नाद का प्रथम अनुभव होता है।

योग दर्शन में नाद को चार रूपों में देखा गया है – बैखरी नाद, मध्यमा नाद, पश्यन्ती नाद और परा नाद। पहला है बैखरी, जिसका तात्पर्य बोलने से उत्पन्न होने वाली ध्वनि से है। आप कुछ बोलते हो तो उस वाक्य को हम सुनते हैं और अपनी बुद्धि के द्वारा उसको समझते हैं। इस ध्वनि को कहते हैं बैखरी। इसके पश्चात् दूसरा नाद है मध्यमा। मध्यमा का अर्थ होता है कि हम बोल नहीं रहे हैं, लेकिन ध्वनि तरंग उत्पन्न हो रही है। जैसे कोई व्यक्ति बुदबुदाता है तो यह नाद अभिव्यक्त होता है। इसके बाद तीसरा है पश्यन्ती नाद, जो मानसिक है और जिसके लिये इंद्रियों की सहायता की आवश्यकता नहीं। बहुत बार मंत्र जप करते समय मन में वही मंत्र प्रबल हो जाता है, और जब मानसिक रूप से वह प्रबल हो जाता है तो वह पश्यन्ती नाद कहलाता है। आप बोल नहीं रहे हो, बुदबुदा नहीं रहे हो, लेकिन अपने मन में कह रहे हो, और उसका नाम, रूप, गुण, सब आप समझ रहे हो। बहुत बार स्वप्न में भी व्यक्ति संगीत को सुनता है, वह भी पश्यन्ती नाद है। बहुत बार ध्यान की अवस्था में, जब चारों ओर स्तब्धता और शांति है, तो घंटी सुनाई पड़ती है, शंख का स्वर सुनाई पड़ता है, बादलों का गर्जन सुनाई देता है, नदी के प्रवाह

की ध्वनि सुनाई पड़ती है। हालाँकि बाहर में न घंटी बज रही है, न शंख बज रहा है, पर आप सुन रहे हो, वह है पश्यन्ती नाद जो मन में प्रकट हो रहा है।

अस्सी के दशक की एक घटना के बारे में आपको बतलाता हूँ। एक बार जंगल में हम ध्यान की साधना कर रहे थे। उस समय भारत में नहीं, अमेरिका में रहते थे। गाड़ी लेकर जंगल में अकेले गये थे। गाड़ी में अपना तंबू था, खाने-पीने का सामान था। जंगल के एक स्थान में हमने अपना तंबू गाड़ा और वहीं पर अपनी साधना करने लगे। एक-दो दिन के पश्चात् जब हम रात को ध्यान कर रहे थे तो ऐसा प्रतीत हुआ कि तंबू के बाहर कोई आकर बहुत जोर का रेडियो संगीत बजा रहा है। हमने चौंककर आँखें खोलीं, सोचा कि यह कौन आया है। संगीत की ध्वनि बहुत तेज थी, जैसे यहाँ शादी के समय बजती है। उत्सुकतावश हमने सोचा, चलो देखते हैं कौन आया है? तंबू से बाहर निकले, रात्रि की स्तब्धता थी, कोई दिखलायी नहीं दे रहा था। हम अकेले थे, लेकिन संगीत की ध्वनि प्रबल रूप से सुनाई दे रही थी। हमने सोचा कि हो सकता है थोड़ी दूरी पर कोई अपना तंबू लगाकर संगीत सुन रहा है। हम अपनी गाड़ी में बैठे, हेडलाईट चालू किये, उस प्रकाश में चारों तरफ देखा, पर कोई नहीं दिखलायी दिया। बड़ा विचित्र लगा कि यह क्या हो रहा है। पहली बार ऐसा अनुभव हुआ था। हम वापस अपने तंबू में आये और सोचने लगे कि यह हम क्या सुन रहे हैं।

सोचते-सोचते मन में विचार आया कि कहीं यह ध्वनि मेरे भीतर से तो उत्पन्न नहीं हो रही है! कहीं इन आवाज़ों को मैं अपने मन में तो नहीं सुन रहा हूँ, और मुझे भ्रम हो रहा है कि यह ध्वनि बाहर से आ रही है? सोचा, ठीक है, एक प्रयोग करके देखते हैं। इसकी आवाज़ को कम कर सकते हैं या नहीं। अब चूँकि पहला ख्याल रेडियो का आया था, तो हमने आँखों को बन्द करके चिदाकाश में रेडियो की कल्पना की। उसमें जो ध्वनि नियंत्रक डायल था, उसको हमने धीरे-धीरे कम करना शुरू किया, अपने मन में ही। आश्चर्य! ध्वनि कम होती गयी, कम होती गयी। हमारा कौतूहल बढ़ा कि फिर से इसको बढ़ा सकते हैं या नहीं। हमने फिर मन-ही-मन डायल घुमाना शुरू किया और ध्वनि बढ़ती गयी। खूब मज़ा आया, यह एक खेल जैसा हो गया!

तब मुझे मालूम चला कि मैं पागल नहीं हो रहा था, बल्कि वह नाद की एक अनुभूति थी, जैसा योगियों ने अपने योग शास्त्रों में लिखा है कि ध्यान की अवस्था में घंटी या शंख जैसी ध्वनियाँ सुनाई पड़ती हैं। यहाँ पर मैं एक ध्वनि को नहीं सुन रहा था, बल्कि पूरे संगीत की रचना को सुन रहा था। यह भी विचित्र था, क्योंकि इच्छानुसार मैं रॉक-एण्ड-रोल को भी सुन सकता था, इच्छानुसार मैं भारतीय संगीत को भी सुन सकता था। इसके बाद एक और घटना घटी। करीब छह महीनों तक अगर मैं किसी संगीत को एक बार सुन लेता था, तो उसको हारमोनियम जैसे वाद्य यंत्रों पर हूबहू बजा सकता था। उसके बाद फिर वह क्षमता धीरे-धीरे कम होकर अदृश्य हो गयी।

यह बात मैं आपको इसलिए नहीं बतला रहा कि मैं साधना में बहुत आगे गया हूँ, बल्कि यह पश्यन्ती नाद का वास्तविक अनुभव था जो मेरे मन में प्रकट हुआ। चूँकि मैं योग से जुड़ा था, इसलिये समझ पाया कि मैं इसको नियंत्रित कर सकता हूँ। जो योग से नहीं जुड़ा होता वह सोचता कि मैं पागल हो रहा हूँ और मानसिक अस्पताल में जाकर भर्ती हो जाता। कहता कि यह क्या हो रहा है, मुझे केवल संगीत सुनाई दे रहा है। यह है पश्यन्ती नाद, मतलब जिस चीज़ का अनुभव या ज्ञान नहीं था, जिस चीज़ के बारे में सोचा नहीं था, वह प्रकट होती है ध्यान की अवस्था में। मेरा अनुभव इतना प्रबल था कि जाग्रत अवस्था में भी, चलते-फिरते भी उसका अनुभव हो रहा था। भाग्यवश आवाज़ को नियन्त्रित करने का तरीका हम को आ गया, नहीं तो हो सकता है हम भी पगला जाते, दिमाग बैचैन हो जाता। यह है पश्यन्ती नाद की अनुभूति, जिसका इंद्रियों से कोई मतलब नहीं है।

पश्यन्ती के बाद जो चौथी स्थिति आती है, वह है परा नाद की अनुभूति जो आध्यात्मिक है। इंद्रियों से, वाणी से या मन द्वारा प्रेरित अथवा रचित किसी ध्वनि से इसका कोई मतलब नहीं। यह एक आध्यात्मिक नाद का अनुभव है, और इसी आध्यात्मिक नाद को योगीजन प्रणव या ॐ के रूप में जानते हैं जिसका अनुभव होता है अनाहत चक्र में।

एक ईसाई संत ने कहा था कि मैं भगवान की सौगंध खाकर कहता हूँ कि मेरी मृत्यु रोज़ रात को होती है। मतलब मृत्यु जीवन में एक बार नहीं, हर रात को होती है, जिसका मतलब होता है कि रोज़ रात को निद्रा के समय मन, इंद्रियों और प्राणों का चेतना में लय हो जाता है। जब आप सोते हो तो क्या आपको जानकारी रहती है कि कल सवेरे हम उठेंगे? नहीं, सोते हुए कुछ भी हो सकता है और उसका ज्ञान भी नहीं होगा। क्यों? इसलिए कि उस समय इंद्रियों और मन की अनुभूति का चेतना में लय हो जाता है। प्राण भी विलीन हो जाते हैं, और इसीलिये व्यक्ति निष्क्रिय पड़ा रहता है। उसे न शरीर का आभास होता है, न स्थान का। अगली सुबह जब वह जगता है तो फिर से उसको अपने शरीर का, स्थान का बोध हो जाता है।

जैसे स्वाभाविक निद्रा में लय की अवस्था आती है, वैसे ही जाग्रत अवस्था में भी लय की अवस्था होती है जिसमें फिर मनुष्य पर और अपर, अर्थात् उच्च और निम्न रहस्यों को जान पाता है। इस अनुभूति के बाद भी व्यक्ति अपने शरीर में ही लौटता है, इंद्रियों के द्वारा संसार से व्यापार करता है, मन के द्वारा दूसरों के साथ अपना संबंध जोड़ता है। जीवन बाह्य रूप से तो सामान्य रहता है, केवल जब वह स्वेच्छा से अपने आप को अपने भीतर समेटता है, तब उस नाद का अनुभव कर पाता है। उसके पश्चात् पुन: उसे संसार में आकर काम करना होता है।

इसीलिये कहा गया है कि प्राण और मन, दोनों को समर्पित किया जाता है ईश्वर के चरणों में – *विलीयते विष्णुपदे मनो मे*। जब इस प्रकार का समर्पण होता है, तो इसका यह अर्थ होता है कि पुन: संसार में आकर हम अपने पुराने जीवन के व्यवहार को नहीं अपनाते, जो छल-कपट, झूठ-सच पर, तामसिक चिंतन, व्यवहार और कर्म पर आश्रित होता है। जब हम उस नाद का अनुभव करते हैं तब मन और प्राण एकाकार हो जाते हैं और जीवन में केवल सत्त्व की अवस्था होती है। व्यक्तित्व में सद्गुणों का साम्राज्य होता है, दुर्गुणों का नहीं। इसीलिये जब साधक पुन: संसार में कार्य करने के लिये प्रवृत्त होता है

तो उसे यह सजगता कायम रखनी चाहिये कि मैं दुर्गुणों की चपेट में नहीं आऊँ। एक बार चपेट में आ गये तो फिर उस उच्च स्थिति एवं अनुभव से हम दूर हो जाते हैं, और फिर से हमें अपनी कुवृत्तियों के साथ संघर्ष करना पड़ता है ताकि उनका शमन हो सके और हम सद्वृत्तियों को जागृत कर सकें। यह एक बहुत बड़ा रहस्य है जिसे लोग समझ नहीं पाते। वे सोचते हैं कि एक बार उच्च अनुभव हो गया तो वह स्थायी है।

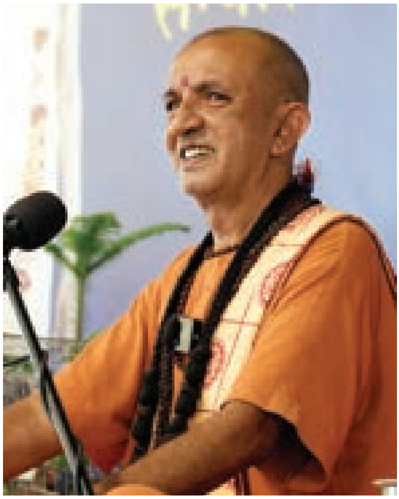

अनुभव स्थायी नहीं है, क्योंकि आपका मन, बुद्धि, मस्तिष्क, शरीर तो वही है, इंद्रियाँ तो वही हैं। घर, परिवार, समाज भी वही है, बाहर तो कुछ बदला नहीं। जब बाहर कुछ नहीं बदला तो उनका प्रभाव तो पड़ने वाला है न? बेटा आकर रोयेगा तो आपका हृदय तो द्रवित होगा ही। कोई आकर गाली दे तो आपको क्रोध तो आयेगा ही। क्या आप उस पर नियंत्रण कर पाओगे? नहीं।

एक संत थे, बहुत साधु आदमी थे। एक बार सत्संग दे रहे थे तो उनकी पत्नी डंडा लेकर आयी और अपने पति पर ताबड़-तोड़ डंडा चला दिया। कौन-सा डंडा था? गन्ने का, जो आप जानते हैं कि टूट जाता है। सत्संग में बैठे लोग बिगड़ गये कि किस हैसियत से तुम साधु महाराज की गन्ने के डंडे से पिटाई कर रही हो। लेकिन साधु महाराज कहते हैं, 'अरे नहीं, सत्संग के बाद मुझे गन्ना खाने के लिये तोड़ना ही था, वह काम इसने कर दिया।' मामला खत्म! अगर आपको कोई गन्ने के डंडे से पीटे तो आप क्या करेंगे? आप अपनी लोहे की छड़ी निकालेंगे और पिटाई करने के लिए तैयार हो जायेंगे।

यह क्रिया और प्रतिक्रिया है। जब प्रतिक्रिया से व्यक्ति मुक्त हो जाता है, तो कुवृत्तियों से स्वत: दूर होता है। लेकिन जब तक जीवन में प्रतिक्रिया रहती है, मन फिर से सांसारिक विषयों और व्यवहारों में लिप्त हो जाता है। इसलिए साधक को यह सावधानी बरतनी पड़ती है। आपने सुना होगा कि पूर्व काल में जब लोग तपस्या करते थे तो उन्हें एक जरूरी नियम का पालन करना पड़ता था – क्रोध नहीं करना। यह ऋषि-मुनियों की बात बोल रहा हूँ, आपकी या

मेरी बात नहीं। वर्षों तक तपस्या करने वाले ऋषि-मुनियों का नियम होता था कि क्रोध नहीं करना। क्रोध तो एक शब्द हुआ, जिसका तात्पर्य संसार में पुन: लिप्त न होने से है। अगर एक बार क्रोध कर दिया तो उस तपस्या का जो फल प्राप्त हुआ है, वह सब समाप्त हो जाता है। मतलब एक बार संसार के छल-कपट, मोह-माया में हम पुन: लिप्त हो गये तो हमने साधना में जो प्राप्त किया है, वह सब समाप्त हो जाता है। इसीलिये सद्गुणों को अपनाकर चलना, यही अध्यात्म का विषय रहा है। अगर कोई सद्गुणों के बिना ही ईश्वर को प्राप्त कर लेता तो सद्गुणों के बारे में कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं रहती। लेकिन आंतरिक निर्मलता केवल सद्गुणों के द्वारा ही संभव हो पाती है। जीवन की पवित्रता केवल सद्गुणों के प्रकट होने पर ही संभव हो पाती है।

योग तारावली में बतलाया गया है कि प्राणायाम के साथ तीन बंधों का अभ्यास भी आवश्यक है। जालंधर बंध, मूल बंध और उड्डीयान बंध – इन तीनों का अभ्यास होना चाहिये, और जब इन तीन बंधों को हम सिद्ध कर लेते हैं तो काल के बंधन से मुक्त हो जाते हैं। इन तीन बंधों में से एक मूलाधार चक्र से जुड़ा है, जो सबसे निचला और भौतिक एवं सांसारिक चक्र है। यह पदार्थ और इंद्रियों का चक्र है। अगला बंध, उड्डीयान बंध मणिपुर चक्र से संबंध रखता है जो प्राणों का केंद्र है। तीसरा यानि जालंधर बंध विशुद्धि चक्र से संबंधित है जिसका संबंध है आकाश तत्त्व के साथ, मतलब चेतना और मन के साथ।

इस प्रकार मूलबंध का संबंध भौतिक इंद्रियों की कामनाओं और वासनाओं के साथ रहता है, उड्डीयान बंध का संबंध रहता है प्राणिक ऊर्जा के साथ, और जालंधर बंध का संबंध रहता है आकाश तत्त्व के साथ। हठयोग में बतलाया जाता है कि प्राणायाम के साथ इन तीन बन्धों को भी कैसे करना चाहिये। जहाँ पर भी ये तीन बंध लगते हैं, शरीर में वहाँ पर नाड़ियों का गुच्छा या जाल रहता है। हमारे शरीर में नाड़ियों के बहुत सारे गुच्छे हैं। वास्तव में देखा जाये तो पैरों के अंगूठों से लेकर सिर तक नाड़ियों के सोलह गुच्छे हैं। इन सोलह जालों में तीन प्रमुख हैं जो मूलाधार, मणिपुर और विशुद्धि चक्रों से संबंध रखते हैं, और इन्हीं तीनों चक्रों पर प्राणायाम के साथ तीन बन्धों का अभ्यास किया जाता है। जब प्राणायाम का इस प्रकार अभ्यास होता है, तब कहा जाता है कि हम काल पर विजय प्राप्त कर सकते हैं।

– 18 जुलाई 2025, गंगा दर्शन

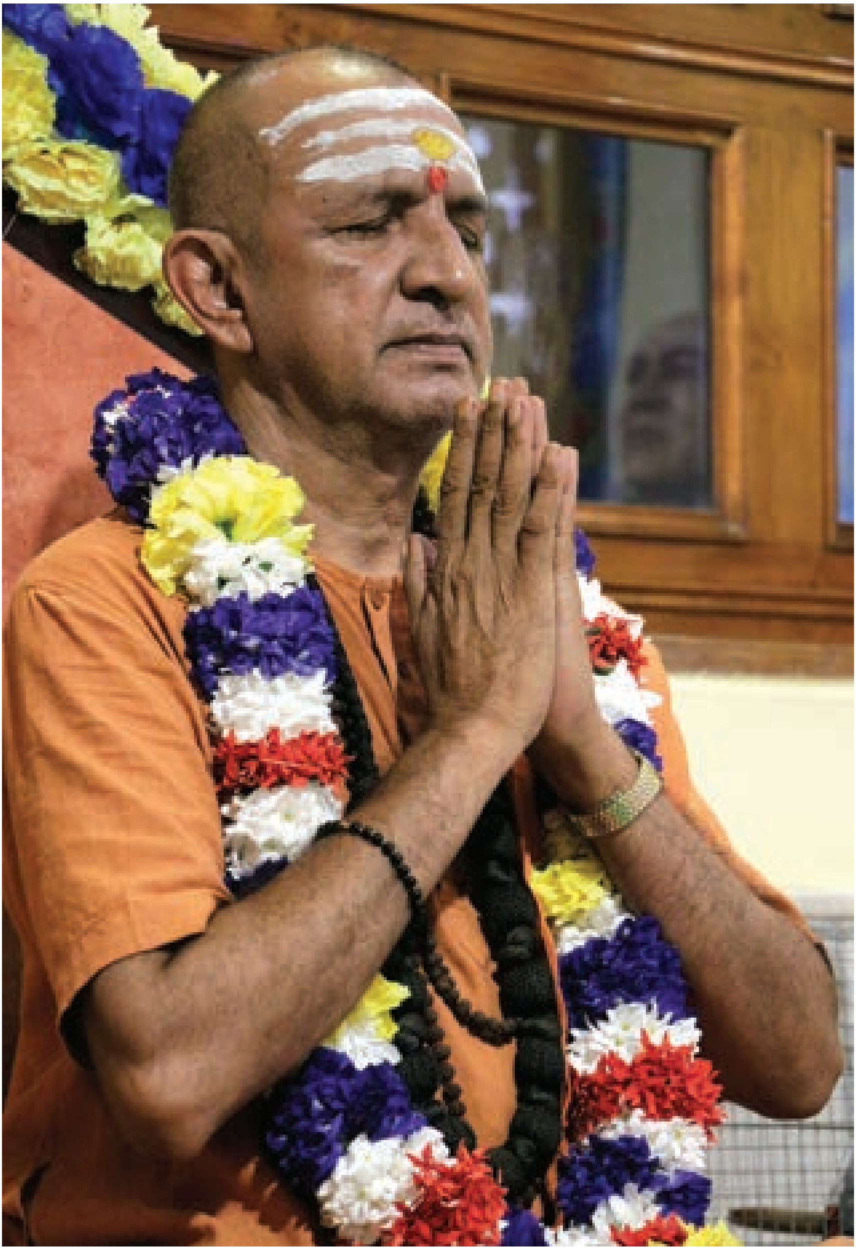

विचार-संयम

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

आप अपने दिनभर के या एक घण्टे के या मात्र एक मिनट के विचारों का निष्पक्ष भाव से अवलोकन करेंगे तो आप यह जानकर आश्चर्यचकित रह जायेंगे कि आपके निन्यानवे प्रतिशत और कभी-कभी तो सौ प्रतिशत विचार कूड़ेदान में फेंक देने लायक ही होते हैं। उनका कोई उद्देश्य, कोई प्रयोजन नहीं रहता और प्रायः वे हानिकारक सिद्ध होते हैं क्योंकि उनसे चिन्ता, थकावट, झुंझलाहट और तनाव ही उत्पन्न होता है।

इसके विपरीत एक ऐसे मन की कल्पना कीजिए जिसमें केवल एक ही विचार है अर्थात् एकाग्र मन, या फिर ऐसा मन जिसमें कोई विचार है ही नहीं अर्थात् विचारशून्य या निर्विकल्प मन। यह कहना कठिन नहीं कि किस मन की क्षमता श्रेष्ठ है। एकाग्र मन आसानी से किसी भी ऐसे रहस्य को सुलझा सकता है जिसपर उसकी एकाग्रता टिकी है, और एक विचारशून्य मन तो सभी रहस्यों का उद्घाटन कर सकता है। विचारशून्य या निर्विकल्प स्थिति में कोई अवरोध शेष नहीं रह जाता।

दूसरी ओर वह मन जो विचारों के शोरगुल से निरन्तर प्रभावित है, उस सारथि के समान है जिसका रथ उसके घोड़ों द्वारा विभिन्न दिशाओं में खींचा जा रहा है। उसकी दशा की कल्पना तो कीजिए। एक घोड़ा दाहिनी ओर खींच रहा है तो दूसरा बायीं ओर। और बाकी घोड़े सीधे सामने के गढ्ढे में! मानव जाति की सर्वश्रेष्ठ उपब्धियाँ ऐसे मन की उपज हैं जो विक्षिप्त विचारों की इस दुर्बल अवस्था से ऊपर उठ गया है। हालाँकि विभिन्न प्रकार के विचारों का चिन्तन मन की स्वाभाविक

अवस्था है, पर शायद यह मानसिक निपुणता की सबसे निम्नस्तरीय अभिव्यक्ति है।

एकाग्र मन शक्तिशाली एवं तीक्ष्ण होता है और इस विक्षिप्त विचार शृंखला को भेद सकने में अत्यन्त सक्षम होता है, क्योंकि उसकी एकाग्रता की ध्येय वस्तु, इन सभी विचारों से कहीं अधिक आकर्षक और प्रिय होती है। एकाग्रता की अवस्था में मन एक संगठित ऊर्जा प्रवाह का रूप ले लेता है जो ध्येय वस्तु पर ज्ञान और प्रकाश डालकर उसके रहस्य को समझ लेता है।

जब हम विचारशून्य मन की बात करते हैं तो हमें याद रखना चाहिए कि यह वही विक्षिप्त मन है जो विचारहीन बना है। यह कोई अलग मन नहीं है। यह मन का रूपान्तरण है, विक्षिप्त से एकाग्र और अंत में पूर्णतः विचारहीन। आपका मन वही मन रहता है, उसी विचार, धारणा, भावना, स्मृति, राग, द्वेष और आसक्ति के साथ। केवल कुछ समय के लिए वे मनोवृत्तियाँ गौण हो जाती हैं और आप पर उनकी पकड़ ढीली पड़ जाती है। उस समय आपका ध्येय कुछ और बन जाता है। यह एक गहन विश्रान्ति का क्षण होता है। मन में नई स्फूर्ति का संचार होता है और मन के माध्यम से शरीर में भी।

जैसे-जैसे मन एकाग्र और धारणा में प्रवृत्त होता है, देश और काल के बंधन ढीले होते जाते हैं। एकाग्र मन समय की सीमाओं को लाँघकर ऐसे क्षेत्र में प्रवेश कर सकता है जहाँ उसे ध्येय का सम्यक् बोध हो जाता है। इस बोध की विशेषता यह रहती है कि जिस मन में यह ज्ञान उदित होता है, उसमें कुछ हानि या विघ्न उत्पन्न नहीं होता, बल्कि उसमें कुछ जुड़ता है, उस मन का सृजन और पोषण होता है।

अपने आप को एक शान्त, स्थिर झील के ऊपर खड़ा देखिये। आपको अपना प्रतिबिम्ब ज्यों का त्यों दिखाई देता है। अकस्मात् झील के बीच एक पत्थर गिर जाता है और झील में लहरें उठती हैं। पहले एक, फिर अनेक। हमारे विचारों की भी यही कहानी है। शान्त, एकाग्र मन में एक विचार आकर गिरता है जिसकी लहरों और वृत्तियों से मन अपने केन्द्र से दूर, बहुत दूर बह जाता है। और कभी तो इतना दूर कि मन को वापस अपनी एकाग्रता की बिन्दु पर लाना असंभव-सा हो जाता है।

विचारों पर संयम का आखिर क्या प्रयोजन है? ऐसी कल्पना कीजिए कि आप पूर्णतया तनावमुक्त, शिथिल एवं शान्त हैं। वैसी शान्ति नहीं जैसी आपको समुद्र तट या पहाड़ों पर घूमने से अनुभव होती है। उसकी भी अपनी

अहमीयत है, पर विचार-शून्यता का अनुभव श्रेष्ठतर है, क्योंकि यह स्थायी है। मानो यह कभी न समाप्त होने वाली शान्ति आपका जन्मसिद्ध अधिकार हो। और वाकई यह आपका जन्मसिद्ध अधिकार है, आपको केवल यकीन करना है, और यह समझने का प्रयास करना है कि विचार और प्रति-विचार की निरन्तर शृंखला कितनी निरर्थक है।

इसी वजह से एकाग्रता को मानसिक सन्तुलन और शालीनता भी कहा गया है। हम सभी जानते हैं कि किसी की सन्तुलित, ललित चाल कितनी मनोहारी दिखलाई पड़ती है। यदि यह बात शारीरिक लालित्य पर लागू होती है तो अवश्य ही मानसिक लालित्य पर भी लागू होगी। मानसिक शालीनता एक ऐसा सम्मिश्रण है आन्तरिक लावण्य और स्वनियंत्रण का, जो किसी के भी मन को सहज मोह लेता है।

मन की विचार-शून्यता एक ऐसी अवस्था है जो मन की जन्मजात क्षमता एवं प्रतिभा को अभिव्यक्त करती है। क्या बगैर मन के कोई जन्मा है? नहीं। हम सबके पास मन है और हम सब उसकी विभिन्न क्षमताओं का अनुभव कर रहे हैं। सोचना, विचारना, समझना, स्मरण करना, सुलझाना, समझना, चाहना, अनुभव करना, विवेचन करना, विवाद करना – ये सब मन की विभिन्न क्षमताएँ हैं जिनके बिना हमारे लिए इस जटिल समाज में कार्य करना बहुत कठिन होगा। आप देखते होंगे कि ये सब कार्य मन कितनी अच्छी तरह से करता है, क्योंकि मन को इसी तरह प्रशिक्षित किया गया है।

यह प्रशिक्षण की ही बात है। जिस प्रकार आपने समाज में जीवन यापन करने के लिए और उसकी समस्याओं को सुलझाने के लिए मन को प्रशिक्षित किया है, उसी प्रकार आपको अन्दर की दुनिया देखने और समझने के लिए भी मन को प्रशिक्षित करना होगा। ये दोनों आपके अस्तित्व की सच्चाइयाँ हैं। जैसे-जैसे आपको अन्तर्जगत् की अनश्वरता का अहसास होने लगेगा वह बाह्य जगत् की क्षणभंगुरता से कहीं अधिक आकर्षक प्रतीत होगा।

क्या विचार-शून्यता मन की आध्यात्मिक स्थिति है? एकाग्रता की सीमा तक, जो मन की एक अत्यन्त प्रबल अवस्था है, व्यक्ति भौतिक और आध्यात्मिक दोनों पक्षों पर ध्यान कर सकता है। पर एकाग्रता के भी परे जैसे-जैसे मन की शक्ति सूक्ष्मतर होती जाती है, उसकी दृष्टि आत्मा के जाज्वल्यमान् प्रकाश पर उत्तरोत्तर केन्द्रित होती जाती है। पदार्थ अब ऐसे मन को सीमित नहीं रख सकता, क्योंकि यह मन विचारों से रिक्त हो गया है। विचार पदार्थ

है। जिस प्रकार आप किसी को अंगूठी देते हैं, उसी प्रकार आप एक विचार को भी दे सकते हैं और वापस ले भी सकते हैं।

विचार ही मन को पदार्थ की ओर भेजते हैं। आपके विचार कामनाओं और इच्छाओं से नियंत्रित होते हैं। इच्छा की सूक्ष्म, अनश्वर शक्ति, आसक्ति से उत्पन्न होती है और आसक्ति आपके कर्मों का परिणाम है। आपके कर्म ही आपको विचार करने और उन विचारों का क्रियान्वयन करने को मजबूर करते हैं। यही प्रेरक शक्ति है। यदि आप यह जानना चाहते हैं कि आपको क्या उत्प्रेरित करता है तो सबसे पहले आपको अपने कर्म समझने पड़ेंगे।

इस समझ के साथ-साथ आपको कर्मों के साथ अपने सम्बन्ध का पुनः अवलोकन करना होगा। क्या आप कर्मों के कर्त्ता हैं? या आप भोक्ता हैं? या आप दोनों हैं, या फिर आप दोनों ही नहीं हैं? क्या इस सम्बन्ध में अकेले आप ही हैं या कोई और भी इस सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है?

जैसे ही आप कर्म और कर्मफल के अन्तहीन चक्र का सिद्धान्त समझने लगेंगे, आप अपने विचारों का पुनर्निर्माण शुरू कर देंगे। यह अपने आप ही बिना किसी प्रयास के होने लगेगा। उदाहरण के लिए, एक कसाई और एक वैद्य के लिए चाकू भिन्न प्रयोजन सिद्ध करता है। क्यों? उनके भिन्न कर्मों के कारण। तो फिर क्या उनके भिन्न विचार नहीं रहेंगे? आपके द्वारा किये गये कर्म आपके विचारों को प्रभावित करते हैं और इसी प्रकार आपके विचार कर्मों को।

विचार एक ताकत है। जिस प्रकार आप मुठ्ठी के प्रहार से या फिर मधुर मुस्कान से किसी को गिरा सकते हैं, उसी प्रकार आप विचार द्वारा भी किसी को गिरा सकते हैं। विचार शक्ति ऐसे सुदूर जगहों पर भी प्रेषित की जा सकती है जहाँ आप पहले कभी न गये हों। विचार की गति सबसे अधिक है, यहाँ तक कि प्रकाश की गति से भी। यदि आप विचार सम्प्रेषण करना जानते हैं तो आप अस्तित्व के सर्वोच्च लोक, सत्य लोक तक अपने विचार भेज सकते हैं जहाँ स्पन्दन अति सूक्ष्म और परिष्कृत होते हैं।

आप जो भी विचार सोचते हैं वह हिरण्यगर्भ में अंकित हो जाता है। समस्त ब्रह्माण्ड असंख्य विचारों की ध्वनि से गूँज रहा है। यदि आप यह जानते कि आपके सब फिजूल और बेमतलब के विचार ब्रह्माण्ड के इस विशाल अभिलेख कक्ष में कहीं-न-कहीं अंकित किये जा रहे हैं तो शायद आप दुबारा सोचते या यूँ कहिये कम सोचते! यदि आप ईमानदारी के साथ और बिना अपने आपको ढील दिये अपने विचारों का दैनिक लेखा-जोखा

रखेंगे तो उसमें बहुत कुछ आप पसन्द नहीं करेंगे और आश्चर्य करेंगे कि आप ऐसा भी सोच सकते थे। विचार ऊर्जा का प्रवाह है। कुछ तरह के विचार, जैसे, काम, क्रोध और घृणा अधिक मात्रा में ऊर्जा खर्च करते हैं, जिससे बाद में निस्तेजता और शक्तिहीनता का अनुभव होता है। यदि आप ऊर्जा की रक्षा करना चाहते हैं तो आपको सात्त्विक और सकारात्मक विचार सोचने चाहिए, न कि ऊर्जा का हनन करने वाले नकारात्मक विचार।

विचारों को नियंत्रित करने का एक सहज उपाय है – श्वास का नियंत्रण। प्रत्येक श्वास के साथ आप विद्युतीय आवेगों को अन्दर खींचते हैं जो आपके अन्दर गूँजकर विचारों की लहरें उत्पन्न करते हैं, जिन्हें आप रेचक के साथ आकाश में छोड़ते हैं। विचार जितना प्रबल होगा, वह उतने अधिक वेग के साथ आप पर लौटेगा और आपको अपने मुताबिक कर्म करने पर विवश करेगा। सनक क्या है? यह मन की ऐसी स्थिति है जब एक ही विचार बार-बार मन में आता रहता है और हर बार प्रबल होता जाता है। यह इस तथ्य का प्रमाण है कि श्वास, विचार और कर्म आपको किस प्रकार चक्रव्यूह में बाँधकर रखते हैं। ऐसी मनोवस्था वाले व्यक्ति को प्राणायाम और कर्मयोग के समन्वित अभ्यासों से बहुत राहत मिलेगी। प्राणायाम वह प्रक्रिया है जिसमें श्वसन को इस हद तक नियंत्रित किया जाता है कि श्वास को लम्बी अवधि तक रोकना संभव हो जाता है। इससे विचारों के क्रम में अवरोध उत्पन्न हो जाता है, क्योंकि विचारों के प्रवेश और विकास का मार्ग ही बन्द हो जाता है।

निरन्तर अभ्यास से धीरे-धीरे यह क्षमता प्राप्त होती है कि हम वही सोचें जो हम सोचना चाहें। क्या आप कभी ऐसा कर पायें हैं? क्या आपने कभी निर्णय लिया है कि अगले क्षण क्या सोचेंगे। प्रायः हम अपने मन को खुली छूट दे देते हैं। हम केवल उसका अनुसरण करते हैं और वही करते हैं जो मन कहता है। पर जो व्यक्ति अपने विचारों पर, और विचारों द्वारा मन पर, जरा भी नियंत्रण कर पाता है, वह दिव्य कान्ति से जगमगा उठता है।

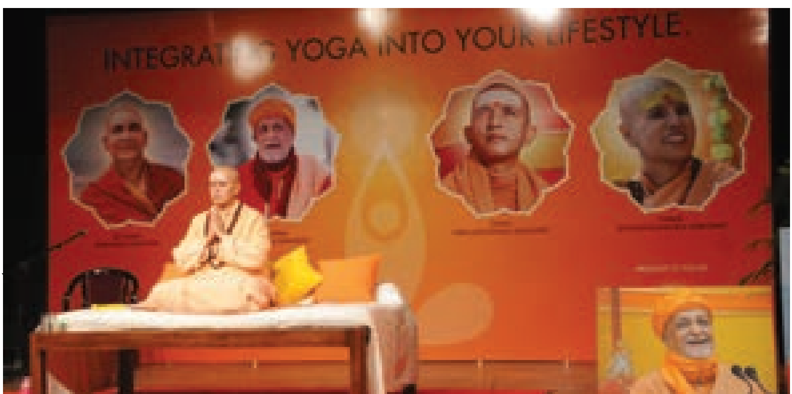

योग और त्याग

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

गंगा दर्शन में योग के दूसरे अध्याय का कार्य तत्परता से किया जा रहा है और सभी का इसमें सहयोग है, क्योंकि यहाँ रहने वाले हर व्यक्ति को अपने यौगिक और आध्यात्मिक अनुभव को गहन करने की आवश्यकता महसूस हो रही है। आखिर यही वह अनुभव है जिसके लिए हम यहाँ आए हैं, और यह आसान नहीं है। जब लोग यहाँ सत्रों या कार्यक्रमों के लिए एक-दो सप्ताह के लिए आते हैं तो विद्यार्थी के रूप में उन्हें आश्रम, सत्संग, लोग, सब बहुत अच्छे लगते हैं। विद्यार्थी रूप में लोग आश्रम को एक भिन्न दृष्टिकोण से देखते हैं, इसलिए उन्हें आनन्द आता है, और अपने आनन्दमय प्रवास के बाद वे यहाँ से चले जाते हैं।

लोगों का एक ऐसा समूह भी है जो अपने सुख-सुविधाओं का त्याग करके कड़ा परिश्रम करता है, ताकि आप लोग आनन्द में रह सको। कई बार जब हम सत्संग या भजन-कीर्तन-नृत्य के कार्यक्रमों में मग्न होते हैं, तो इनका सफलतापूर्वक संचालन करने वाले लोग प्राय: वहाँ उपस्थित भी नहीं रहते। उस समय वे विभिन्न क्षेत्रों और विभागों में अपना दायित्व निभा रहे होते हैं, पर्दे के पीछे। इसलिए यह मत सोचना कि यहाँ रहने वाले अन्तेवासी चौबीसों घण्टे योग, शान्ति और आनन्द के सागर में तैरते रहते हैं। यह मत सोचना कि स्वामी निरंजन आध्यात्मिक जीवनशैली जीते हैं। मैं तो प्रत्येक व्यक्ति की अपेक्षाओं और समस्याओं के सैलाब से घिरा रहता हूँ। हर व्यक्ति मुझे अपनी समस्यायें बताने के लिए समय की मांग करता है, मानो मैं उनका कूड़ादान हूँ। फिर भी मैं इस पर ध्यान नहीं देता क्योंकि मैं जानता हूँ कि मुझमें इस कूड़े-करकट को जला देने की क्षमता है, जो तुम नहीं कर सकते।

यही वास्तविक स्थिति है; ऐसा नहीं है कि यहाँ हर कोई एक आदर्श आध्यात्मिक जीवन जी रहा है। विद्यार्थियों का जीवन अन्तेवासियों से बेहतर है, और अन्तेवासियों का जीवन मुख्य आचार्य से कुछ बेहतर। मुख्य आचार्य का जीवन कठिन और दुष्कर होता है। जिस क्षण मैं अखाड़ा के द्वार से बाहर आकर आश्रम में घूमना प्रारंभ करता हूँ, सैकड़ों आँखें मेरा पीछा करती हैं कि मैं कहाँ जा रहा हूँ, क्या कर रहा हूँ, किससे बात कर रहा हूँ, मुस्कुरा रहा

हूँ या क्रोधित हूँ या किसी के साथ मज़ाक कर रहा हूँ। मेरे प्रत्येक कार्य का विश्लेषण किया जाता है, इसलिए मेरे लिए यह शान्तिदायक जीवन नहीं है। इस बात को याद रखिये। ऐसा जीवन कैसे शान्तिदायक हो सकता है जब तुम हमेशा अनेक पैनी आँखों के घेरे में रहते हो।

त्याग ही संन्यास-जीवन का सर्वोच्च गुण है, क्योंकि तुम जितनी प्रगति करते जाते हो, उतना ही अधिक तुम्हें अपना त्याग करना होता है। इस आश्रम में स्थायी रूप से रहने वाले हम सभी लोगों के लिए यही सर्वोच्च साधना है। यहाँ कुछ लोग ऐसे हैं जो आश्रम आने से पूर्व आठ घण्टे ध्यान करते थे, अब यहाँ उन्हें शान्ति से बैठने के लिए मुश्किल से आठ मिनट मिलते हैं। अब वे स्वयं को निरन्तर व्यावहारिक कार्यों में व्यस्त रखते हैं और साथ ही अपनी आन्तरिक सजगता को भी बनाये रखते हैं। ऐसे लोगों को सलाम, जो व्यावहारिकता को बनाये रखने के साथ-साथ आध्यात्मिकता पर भी ध्यान केन्द्रित रखते हैं। हो सकता है वे आसन, प्राणायाम और ध्यान के अभ्यास न कर पाते हों, किन्तु वे अन्तरंग योग का अभ्यास करते हैं, साथ ही कठिन बाहरी परिस्थितियों का सामना भी करते है। वे निरन्तर इसमें लगे हुए हैं, और यही सच्चा त्याग है जिसके विषय में मैं बोल रहा हूँ।

जब साधक की अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं और इच्छाओं की प्राथमिकता नहीं रह जाती और वे यह सुनिश्चित करने के लिए उनसे आगे बढ़ जाते हैं कि अन्य लोग गुरु के आध्यात्मिक संकल्प से जुड़ सकें, यही वास्तविक प्रेम और त्याग है। यह उन संन्यासियों और अन्तेवासियों का त्याग और प्रेम है जो यह सुनिश्चित करने के लिए समर्पित हैं कि गुरु की शिक्षाओं को सही रूप में आप सब तक पहुँचाया जा सके। मैं संन्यासियों और अन्तेवासियों के उस कठोर परिश्रम को कृतज्ञता सहित स्वीकार करता हूँ जो वे इस संकल्प को साकार करने के लिए निरन्तर करते हैं।

आत्मा का स्वरूप

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

अगर आत्मा सत्-चित्-आनन्द है तो वह दुःख, सन्ताप, चिन्ता, द्वन्द्व और अन्य शक्तियों का शिकार क्यों होती है? हम कहते हैं शिवोऽहम्, जिसका अर्थ है 'मैं शिव हूँ', 'मैं वह आनन्दस्वरूप आत्मा हूँ'। यह आनन्दमय आत्मा क्यों दुःख और सुख का अनुभव करती है? इस प्रकार का प्रश्न बहुतेरे लोगों के मन में उठता है, जो आत्मा और उसके स्वरूप तथा स्वभाव की वास्तविक बात को समझना चाहते हैं। संक्षेप में इसका उत्तर देता हूँ।

जिस प्रकार एक राजा स्वप्न में अपने आप को एक भिखारी के रूप में देखता है, किन्तु वास्तव में वह राजा है, उसी प्रकार आत्मा दुःख और सुख की कल्पना कर लेती है। यही शास्त्रों का कहना है। जब आत्मा पूर्ण आनन्द

और ज्ञानमय है तो यह भ्रम क्यों? क्यों वह अपने आपको दूसरा समझ लेने की गलती करती है?

मैं रात्रि में सोता हूँ और स्वप्न देखता हूँ कि मैं एक गृहस्थ हूँ, लेकिन वास्तव में तो मैं संन्यासी हूँ। मैं सत्य को तभी जान पाता हूँ जब मैं जग जाता हूँ। जिस प्रकार मैं संन्यासी था, और अब भी संन्यासी हूँ, उसी प्रकार वास्तव में, मैं आत्मा हूँ, यद्यपि किसी प्रकार मैं अपने वास्तविक स्वभाव को भूल गया हूँ।

अब प्रश्न यह उठता है कि यह आत्मा भ्रम में क्यों? क्यों और कब इस भ्रम के आवरण ने आत्मा को ढँक लिया? कोई भी इसका उत्तर ठीक ढंग से नहीं दे सकता। वेद और शास्त्र इस प्रश्न पर चुप हैं। हम केवल यही कह सकते हैं कि महाप्रभु स्वयं एक अद्भुत खेल चला रहे हैं। बिजली का बल्ब चमकता है, पर पंखा बिल्कुल स्थिर रहता है, यद्यपि दोनों ही विद्युत-घर की तारों के माध्यम से जुड़े रहते हैं। क्यों? इसलिए कि बल्ब का प्लग लगा हुआ है, किन्तु पंखे का अलग किया हुआ है। उसी प्रकार जब हम स्वयं को दुनिया और उसकी वस्तुओं से जोड़ लेते हैं, तो हम उनसे प्रभावित होते हैं और परिणामस्वरूप हमें सुख और दुःख का अनुभव होता है।

दुःख की जड़, उसका कारण कहाँ है? हम उसे अनादि मान लेते हैं, किन्तु मेरे विचार में दुःख की जड़ हमारे अन्दर ही है, दूर नहीं। इसकी जड़ हमारे मन और इन्द्रियों में है। यदि योग द्वारा हम अपने मन को नियन्त्रण में रखें, अथवा उसे प्रभु के पद्म-चरणों में समर्पित कर दें तो हमारे दुःख समाप्त हो जाएँगे। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और प्राण के साथ पाँच ज्ञानेन्द्रियों और पाँच कर्मेन्द्रियों के संयोग से हम भूतकाल का सुख और दुःख के रूप में अनुभव करते हैं। जब जीवात्मा उन्नीस तत्त्वों के साथ अपने को सम्बन्धित करती है, तब वह सुख और दुःख का बोझा बन जाता है।

यह शरीर क्षेत्र है, इसमें एक क्षेत्रज्ञ रहता है। यह क्षेत्रज्ञ ही शिव, राम या सत्-चित्-आनन्द आत्मा है, उसे तुम चाहे जिस-किसी नाम से पुकारो। जब यह क्षेत्रज्ञ अपने आपको क्षेत्र और उसके आवश्यक तत्त्वों के साथ एकरूप कर लेता है, तब यह क्षेत्र अर्थात् शरीर में होने वाली सभी घटनाओं का अनुभव करता है।

एक ताजा नारियल लो। उसके ऊपरी छिलके को तोड़ो। भीतर की गिरी भी टूट जाएगी। अब दूसरा सूखा हुआ नारियल लो और तोड़ो। ऊपरी

छिलका टूट जाएगा, किन्तु भीतर की गिरी नहीं टूटेगी। क्यों? इसलिए कि गिरी ने अपने आपको ऊपरी छिलके से अलग कर दिया था। इसी प्रकार यदि हम अपनी आत्मा को शरीर से अलग समझ लें तो हम शरीर में होने वाली घटनाओं से अप्रभावित रहेंगे।

दूसरा उदाहरण लो। रमेश और सुरेश एक-दूसरे से अपरिचित हैं। रमेश के परिवार में कोई मर जाता है। सुरेश उस मृत्यु से प्रभावित नहीं होगा, क्योंकि रमेश से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। दूसरे वर्ष सुरेश की लड़की से रमेश की शादी हो जाती है। इसके बाद भविष्य में सुरेश बराबर रमेश के परिवार की प्रत्येक घटना से निश्चय ही प्रभावित होगा, क्योंकि उसने उससे अपना सम्बन्ध जोड़ लिया है। इसी प्रकार आत्मा ने प्रकृति के साथ अपना सम्बन्ध अनादि काल से जोड़ रखा है।

तब हमें आत्मा को प्रकृति से अलग करने के लिए करना क्या चाहिए? जिस प्रकार दूध से मक्खन और धान से चावल निकाला जाता है, उसी प्रकार हमें साधना के द्वारा पुरुष तत्त्व और प्रकृति तत्त्व को अलग-अलग करना है। जिस प्रकार कच्चे माल से लोहे एवं इस्पात को भट्ठी में तपा कर अलग किया जाता है, उसी प्रकार हमें सत्य को असत्य से योगाग्नि द्वारा अलग करना होगा। जिस प्रकार हम कच्चे माल से इतर तत्त्व हटाकर सोना प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार हमें प्रकृति की तहों में छिपी हुई सुप्त आत्मा को खोजना तथा उसे प्रकृति से अलग करना है। इसका उपाय साधना ही है।

मान लो, तुम जंगल में जाते हो। एक शेर तुम्हारे सामने से तुम्हें बिना कुछ नुकसान पहुँचाए चला जाता है। वह चला गया है जरूर, इसमें कोई सन्देह नहीं, किन्तु तुम्हारे मन की हालत क्या होगी? बिल्कुल भय से परिपूर्ण। तुम्हें काल्पनिक शेर भी सामने दिखता रहेगा। उसके दाँत और भयानक मुँह तुम्हारे मन के आगे बिल्कुल यथार्थ की भाँति प्रकट होते रहेंगे। यही चित्त-लय की अवस्था है।

किसी युवा स्त्री का पति मर गया, किन्तु तब भी उसे सदा यही अनुभव होता था कि वह उसके साथ है, और वह उसे खाना खिलाती थी। उसके पुत्रों ने कहा कि वह स्वयं दो व्यक्तियों का खाना खा जाती थी। अब वह सारी बातें समझ गई है। यह मन की तन्मय अवस्था का उदाहरण है, जब मन किसी एक में लीन हो जाता है। जब तक हम अपने चित्त को लीन नहीं करेंगे, तब तक प्रकृति और पुरुष एक-दूसरे से अलग नहीं होंगे। हंस नीर और क्षीर को

अलग करने के लिए प्रसिद्ध है। यह श्वेत पक्षी जल में रहता है। इसका सबसे प्रिय निवास-स्थान मानसरोवर अर्थात् मन की झील है, जो कैलास के निकट स्थित है। मैंने उस पक्षी को देखा है। मैं उसके विषय में पूर्ण रूप से जानता हूँ। मैं 'हंस' को ही नहीं, बल्कि 'परमहंस' को भी जानता हूँ, जो नीर से क्षीर या पदार्थ से चेतना को अलग करने की कला में पारंगत है।

जब तुम आधी रात के समय श्मशान घाट में जाते हो तो तुम्हें ऐसा लगता है जैसे चारों ओर बहुत-से लोग हैं, जैसे बहुत-सी आवाजें बहुत दूर से आ रही हैं, और जैसे कोई मृतात्मा सामने आ गई है। ऐसे भयावह स्थान में मन की अवस्था में बहुत जल्दी विश्वास और भय का स्थान बन जाता है, और इसीलिए कोई-न-कोई आकृति बिल्कुल स्पष्ट दिखने लगती है।

ईशावास्योपनिषद् में हम पढ़ते हैं कि सत्य का मुँह सुवर्ण के ढक्कन से ढका हुआ है। सचमुच यह आनन्दमय आत्मा तीन पर्तों से आवृत्त है। हमें इन आवरणों को हटाना है। तीन परदे तथा सात द्वार हैं। तीन आवरणों तथा सात द्वारों के पीछे आत्मा अथवा पुरुष का क्षेत्र है, जहाँ केवल अनन्त आनन्द है। जब तक हम तीन पर्दों, सात द्वारों और आन्तरिक पुरुष को नहीं जानेंगे, और जब तक हम यह नहीं जान लेंगे कि हमारे अन्दर महान् शक्ति है, तब तक हमें दुःख और शोक से मुक्ति नहीं मिलेगी।

यह आत्मा वास्तव में निराकार है। इसका ही नाम शिव, राम, पुरुष इत्यादि है। यह आत्मा प्रकृति की तहों के अन्दर रमी है। इस आत्मा के चारों ओर करोड़ों मील तक चेतना फैली हुई है, जिसमें नारायण सो रहा है। जिसने साधना के द्वारा सत्यलोक में प्रवेश कर लिया है और अपनी आत्मा को उच्च गगन में ऊपर उठा लिया है, वह भगवान विष्णु को क्षीर-सागर में देखता और जानता है। वे अनन्त सागर में शयन करते हैं।

मैं तुम्हें यह बताना चाहता हूँ कि यह शरीर जितना तुम देखते हो, उतना ही नहीं है। दृष्टि और अनुभव की सीमा के परे हमने इसमें अनन्त शक्ति को देखा है। शरीर के आवरण के भीतर दिव्य-चेतना की परम शक्तियाँ छिपी हुई हैं। सात द्वारों के पीछे चेतना छिपी हुई है। आठवें द्वार पर तुम्हें उस आत्मा को पाना है। सब द्वारों को एक-एक करके खोलते जाओ। लो, वह वहाँ है। आकाश में ऊपर उठो। उन सात सीढ़ियों पर चढ़ो। सातवीं के पार एक मन्दिर है, जो प्रकाश से भरपूर एवं अनन्त सूर्यों के प्रकाश के समान है। वहाँ एक पवित्र पक्षी है, जो सहस्र दलों वाले शान्त और सुन्दर कमल के ऊपर बैठा

हुआ है। और मुझसे सुनो कि वह मन्दिर तुम्हारे अन्दर है और वह पक्षी भी उसी मन्दिर के अन्दर है।

हमारा महान् बृहदारण्यक उपनिषद् कहता है, 'वह जो मेरे अन्दर निवास करता है, जो मेरा तत्त्व है, किन्तु जिसे मैं जानता नहीं हूँ, और जो अन्दर से मुझे संचालित करता है, वही आत्मा है – अन्तर का शासक और अमर आत्मा।' उस पुरुष को कैसे जाना जाए? उसके पास कैसे पहुँचा जाए? मन के नियन्त्रण के द्वारा। फिर, मन को कैसे नियन्त्रित किया जाए? इसको वश में लाने के लिए अनेक तरीके हैं। मैं तुम्हें सर्वोत्तम तथा सबसे सरल तरीका बतलाता हूँ।

जब बहुमूल्य गहनों की कोई पेटी खो जाती है तब हम अन्तर्मुखी हो जाते हैं। जब कोई बहुत बड़ी समस्या हमें घेरती है तो हमें अपने चारों ओर

के वातावरण की खबर नहीं रहती। बहुत-से मनुष्य सामने से चले जाते हैं, पर हम उन्हें नहीं देखते। यह अन्तर्मुखी अवस्था उसको प्राप्त हो सकती है जो इसके तरीके को जानता है। जब कोई स्त्री सिलाई का कार्य करती है तो वह साथ-साथ बच्चे के लिए लोरी भी गाती है। उसके हाथ अपने आप चलते भी रहते हैं, और साथ-साथ वह अपनी सहेली से घर और परिवार के विषय में बातचीत भी करती जाती है। इससे यह पता चलता है कि मन के अन्तर्मुखी होने पर भी बाह्य कार्य चलते रह सकते हैं।

अन्तर्मुखी भावना के लिए तुम्हें एकाग्रता और ध्यान का तरीका जानना पड़ेगा। एक बार तुम उस तरीके को जान जाओ, तो तुम बहुत आसानी से उसका अभ्यास कर सकते हो। धीरे-धीरे मन नियन्त्रण में आ जाएगा। ध्यान से पुरुष और प्रकृति को अलग करने की क्रिया सम्पन्न होती है। यह कैसे? जब हम राम के चित्र पर ध्यान की पूर्णता प्राप्त करते हैं, तब हम उसे बिल्कुल वास्तविक रूप में अपने सामने देख सकते हैं। निराकार साकार बन जाता है। प्रकृति अर्थात् पदार्थ से चेतना अलग हो जाती है। इस अवस्था में मन का अस्तित्व नहीं रह जाता। जब तुम राम पर ध्यान करते हो तो वास्तव में तुम अपनी आत्मा पर ध्यान करते हो, जो स्वयं को तुम्हारे प्रिय रूप में प्रकट करती है। यही तुम्हारी आत्मा है, जो तुम्हारे पास सात द्वारों को पार करके आती है। यही मन्दिर का हंस है, जिसे तुम, जिस रूप पर ध्यान करते हो, उसी रूप में देखते हो।

जब तुम समाधि में रहते हो तो ये सात द्वार खुल जाते हैं, आवरण हट जाते हैं। यही कारण है कि मैं तुम्हें ध्यान करने के लिए कहता हूँ। जैसे ही चित्त का लय होता है और ध्यान गहरा तथा प्रगतिशील होता है, वैसे ही आत्मा व्यक्त होना प्रारम्भ कर देती है। लो, प्रकाश स्पष्ट दिख रहा है। वही आत्मा, जो तुम्हारे शरीर और मस्तिष्क को कार्य कराती है, साकार होकर तुम्हारे सामने आती है।

निराकार आत्मा के प्रकटीकरण के लिए सर्वोत्तम तरीका भक्ति है। यह आत्मा, यह महान् शक्ति, जो हमारे अन्दर सोई हुई है, सात्त्विक, राजसिक और तामसिक रूपों में अपने को प्रकट करती है। राजसिक और तामसिक वृत्तियाँ साधक के ऊपर प्रतिक्रिया-स्वरूप दुःख, कष्ट और कभी-कभी मृत्यु तक भी ले आती हैं, जबकि सात्त्विक वृत्तियों में प्रकट होने से शान्ति, आनन्द और मोक्ष की प्राप्ति होती है।

अध्यात्म संस्कार साधना

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

अध्यात्म धर्म से अलग है। धर्म रूढ़िवादी विश्वासों और कर्मकाण्डों पर केंद्रित रहते हैं, जो सभी अनुयायियों के लिए समान रूप से विहित होते हैं। यह बात उन स्थानों में विशेष रूप से लागू होती है जहाँ एक प्रमुख धर्म का बोलबाला है। लेकिन ऐसे स्थान भी हैं, विशेषकर पूर्वी देशों में, जहाँ कई धर्म साथ-साथ चलते हैं। यहाँ माना जाता है कि मार्ग अलग-अलग हो सकते हैं, लेकिन लक्ष्य तो एक ही है। धर्म अलग-अलग हो सकते हैं, फिर भी उन्हें जोड़ने वाला सूत्र एक ही है, और वह है आध्यात्मिकता। यद्यपि मार्ग, प्रक्रिया, अभ्यास, विश्वास, कर्मकाण्ड और अनुष्ठान अलग-अलग हो सकते हैं, लेकिन जिस अनुभव की हर कोई तलाश कर रहा है, वह आध्यात्मिक ही है। जीवन में पवित्रता, मन एवं चेतना में जागृति और शक्ति तथा रचनात्मकता की अभिव्यक्ति – ये आध्यात्मिकता के संकेत हैं।

अध्यात्म जीवन का सार है। इसे ऐसी परिस्थितियों को विकसित करने के दृष्टिकोण से समझना होगा जो आपको स्थूल, भौतिक स्वभाव से आध्यात्मिक स्वभाव की ओर ले जाती हैं। हमारे गुरु, श्री स्वामी सत्यानंद जी हमेशा कहा करते थे, 'आध्यात्मिक जीवन का उद्देश्य आत्म-साक्षात्कार या समाधि नहीं है। यह एक ऐसी सजगता और चेतना का विकास है जिसका स्वरूप आध्यात्मिक है।'

'आध्यात्मिक' को कैसे परिभाषित किया जाए? संस्कृत में अध्यात्म शब्द दो शब्दों का संयोजन है – अधि, जिसका अर्थ है निकट आना और आत्मा, जिसका अर्थ है स्वयं का आंतरिक स्वरूप अर्थात् 'मैं' का भाव। मैं कौन हूँ? क्या मैं शरीर हूँ? नहीं, मैं अपने शरीर का अनुभव करता हूँ – चोट लगने पर दर्द होता है, ठण्ढ लगने पर पेशियाँ काँपती हैं, गर्मी लगने पर रोमछिद्रों से पसीना निकलने लगता है। तो मैं यह शरीर नहीं हूँ, जिसका मैं प्रतिदिन अनुभव करता हूँ; यह केवल एक बाहरी आवरण है। यदि मैं शरीर नहीं हूँ, तो फिर मैं कौन हूँ? मन? नहीं। मन तो केवल जीवन को, अपने कर्मों और कामनाओं को अनुभव करने का एक साधन है। यदि मैं मन नहीं हूँ, तो फिर यह 'मैं' कौन है? जिसे 'मैं' कहा जाता है, वही आत्मा है।

हम अपनी चेतना के माध्यम से आत्मा का अनुभव करने में सक्षम हैं। यदि कोई मनुष्य चेतनशील नहीं है, तो वह अपने जीवन, अपने आप या दुनिया के बारे में सजग नहीं हो सकता। यह चेतना आत्मा की एक अभिव्यक्ति है। जिस तरह आप केवल जागते समय ही स्वयं को अभिव्यक्त करते हैं, सोते समय कोई अभिव्यक्ति नहीं होती; उसी तरह चेतना भी आत्मा की एक अभिव्यक्ति है। वह चेतना स्थूल भी है, सूक्ष्म भी और पारलौकिक भी।

हमारे ऋषि-मुनियों ने कहा है कि जब आप आत्मा के करीब आते हैं तो आपकी मानसिकता, विचार, व्यवहार, परिस्थितियाँ, सब कुछ बदल जाते हैं। ऐसा क्यों होता है? इसलिए कि आपका दृष्टिकोण बदल जाता है। उदाहरण के तौर पर जब आप किसी काम में लगे होते हैं, तो एक विशेष मानसिकता होती है जो आपको प्रेरित करती है, और वह मानसिकता आपसे जुड़ी होती है – आप सोचते हैं कि इस काम से आपको क्या लाभ होगा। लेकिन जब आप किसी मंदिर या आश्रम में जाते हैं तो आप उन्हीं कामों में लग जाते हैं, आप झाड़ू लगाते हैं, सफाई करते हैं, खाना बनाते हैं, लेकिन वहाँ आप ये सब अपने लिए नहीं कर रहे हैं। आपका नजरिया बदल गया है। 'मैं यह सब अपने लिए कर रहा हूँ' का रवैया अब नहीं रहा।

जब आप अपने लिए कुछ नहीं कर रहे तो फिर आप किसके लिए कर रहे हैं? आप कह सकते हैं, 'मैं यह गुरु के लिए या भगवान के लिए कर रहा हूँ।'

जब आप ऐसा कहते हैं तो पूरा दृष्टिकोण और चिंतन बदल जाता है, भले ही कार्य वही हो। इस बदलाव में एक मानसिक और भावनात्मक पवित्रता की झलक दिखाई देती है। यह दर्शाता है कि जैसे-जैसे आप आत्मा के करीब आते हैं, आपका दृष्टिकोण बदलता है और आप अधिक शुद्ध, निष्कपट एवं सकारात्मक बनते हैं। आत्मा की ओर जाने पर संसार से प्राप्त सभी नकारात्मक भाव सकारात्मक और उदात्त भावों में बदल जाते हैं।

इस प्रकार आध्यात्मिक अनुभव वह अवस्था है जहाँ आप पवित्रता, शांति, तृप्ति, संतोष और संपूर्णता का अनुभव करते हैं। उसी शांति और संपूर्णता में ईश्वर का अनुभव होता है। इसलिए अध्यात्म का धर्म से कोई लेना-देना नहीं है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें आप अपने आंतरिक स्वरूप एवं स्वभाव के समीप आते हैं और अपने सारतत्त्व को खोजते हैं। भारतीय दर्शन और योग के दृष्टिकोण से यही आध्यात्मिकता है। यह एक पहलू हुआ।

संस्कार साधना

दूसरा पहलू है संस्कार। संस्कार क्या है? लोग कहते हैं कि संस्कार गहन मन में पड़े प्रभाव या छाप हैं। अगर आप शब्दकोष में संस्कार शब्द देखें तो इसी प्रकार की परिभाषा मिलेगी। कहा जाता है कि हर विचार और कर्म एक संस्कार बनाता है जो मन की गहराई में बस जाता है। वह संस्कार यह निर्धारित करता है कि आप भविष्य में कैसे कार्य और व्यवहार करेंगे। लोग यह भी मानते हैं कि संस्कार मन में बसे प्रभाव हैं जो जीवन में अभिव्यक्त होकर व्यक्ति के चरित्र, व्यक्तित्व और दृष्टिकोण को निर्धारित करते हैं। ये सारी परिभाषाएँ अपनी जगह सही हैं, पर साथ ही संस्कार एक रूप, एक आकार को भी इंगित करता है।

आग की गर्मी का अनुभव संस्कार बनकर एक अंतर्निहित स्वभाव हो जाता है जिसमें आप आग को देखते ही उसकी लपटों से बचने का प्रयास करते हैं। यह एक प्रकार का संस्कार है जो अनुभव से बनता है। दूसरे प्रकार का संस्कार वह है जो आप जन्म के साथ लेकर आते हैं। यह आपका अपना अनूठा स्वभाव और व्यक्तित्व है, जो बड़े होने पर खुद को अभिव्यक्त करेगा और तय करेगा कि आप जीवन में क्या बनेंगे। अन्य प्रकार का संस्कार वह है जो आपको माता-पिता और समाज से मिलता है। माता-पिता अपने बच्चे से कहते हैं, 'सच बोलो।' बच्चा उस बात को सुनता है और अगर वह उसे

स्वीकार करता है तो वह संस्कार बन जाता है। बच्चा भविष्य में सच ही बोलेगा। अगर आप उससे पूछेंगे, ‘तुम सच क्यों बोलते हो?’ तो वह कहेगा, ‘यह मेरे माता-पिता से मिले संस्कार के कारण है।’ इस प्रकार, संस्कार हमारे आसपास के वातावरण, हमारे माता-पिता, समाज, संस्कृति, धार्मिक विश्वास, और जीवन की विभिन्न परिस्थितियों से बनते हैं तथा फिर हमारे विचार, वाणी, कर्म और व्यवहार को एक आकार देकर उन्हें प्रभावित करते हैं।

इस संदर्भ में, संस्कार को मन की गहरी परतों में मौजूद किसी छाप या आकार के रूप में ही नहीं देखा जाना चाहिए, बल्कि एक ऐसी प्रवृत्ति के रूप में देखा जाना चाहिए जिसे आप जीते हैं और संस्कार के सक्रिय होने पर अपने व्यवहार में अभिव्यक्त करते हैं। यह इंद्रियों, मन और भावनाओं की प्रवृत्ति है। ये प्रवृत्तियाँ उत्थानकारी और रचनात्मक भी हो सकती हैं, या फिर विनाशकारी और हानिकारक भी।

आदत तब संस्कार बनती है जब वह तीव्र लालसा में बदल जाती है। उदाहरण के तौर पर कोई शराबी या नशे का आदी व्यक्ति पुनर्वास केंद्र जाता है। पुनर्वास केंद्र में रहने के दौरान व्यक्ति हमेशा शराब की छोटी-सी चुस्की या नशे की छोटी-सी खुराक के लिए तत्पर रहता है। यह एक आदत है, लेकिन फिर वह आदत संस्कार बन जाती है जो उसे अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए अपराध तक करने पर मजबूर कर देती है। यह स्वभाव का हिस्सा बन जाता है और एक विचार आता है कि ‘मैं इसके बिना नहीं रह सकता, यह मेरी जरूरत है और मैं इसके लिए कुछ भी कर सकता हूँ।’ इस तरह संस्कार हानिकारक और विनाशकारी हो सकते हैं। इसके विपरीत सकारात्मक संस्कार होते हैं जो उत्थान करने वाले होते हैं।

आध्यात्मिक परंपराओं ने माना है कि आध्यात्मिक सजगता विकसित करने के लिए व्यक्ति को अपने जीवन, मन, व्यक्तित्व और स्वभाव में सही परिस्थितियाँ बनानी पड़ती हैं। इन स्थितियों को प्राप्त करने के लिए उन्होंने अनुशासनों और लक्ष्यों को निर्धारित किया। उन्होंने लोगों को ऐसे मार्गों पर चलकर लक्ष्य की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित किया जो उनकी राय में सही परिस्थितियाँ बनाने के लिए उपयुक्त और अनुकूल थे। यही यम और नियम बन गए।

यम और नियम धार्मिक उपदेश नहीं हैं। घर पर भी आप अपने बच्चे से कहते हैं, ‘सच बोलो’ या ‘चोरी मत करो।’ घरों में यही सामान्य भाषा है।

फिर भी, जब इन्हीं विचारों को साधना के रूप में लिया जाता है तो आपको लगता है कि ये धार्मिक उपदेश हैं। जब योग में सत्य की बात की जाती है तो अचानक यह एक यौगिक सिद्धांत बन जाता है। जब धर्म में सत्य की बात की जाती है तो यह धार्मिक उपदेश बन जाता है। जब आप अपने बच्चे से सच बोलने के लिए कहते हैं, तो यह एक सही निर्देश है; इसे आध्यात्मिकता या धार्मिकता के परिप्रेक्ष्य में देखने की आवश्यकता नहीं।

जब इन स्वाभाविक विचारों को जीवन में प्रतिबद्धता के साथ एक साधना के रूप में अपनाया जाता है तब फिर ऐसा क्यों सोचना कि 'मैं एक धार्मिक नियम का पालन कर रहा हूँ' या 'मैं एक आध्यात्मिक सिद्धान्त का अनुसरण

कर रहा हूँ? ये स्वाभाविक व्यवहार हैं जिन्हें जीवन में अपनाना चाहिए। यही वे संस्कार हैं जिनके साथ आपको काम करना है। इसलिए इन्हें धार्मिक, आध्यात्मिक, यौगिक, वेदांतिक, तांत्रिक, बौद्ध, ईसाई, इस्लामी या शिंतोवादी के रूप में वर्गीकृत किए बिना सही तरीके से विकसित करना चाहिए।

जो विचार आप घर पर अपने बच्चों को सही और उचित समझ देने के लिए सिखाते हैं, वही विचार आपको स्वयं पर भी लागू करना होगा ताकि उचित संस्कार पैदा हो सके। फर्क सिर्फ इतना है कि यहाँ आप सचेत प्रयास कर रहे हैं और इसे ही साधना कहते हैं। आध्यात्मिक सजगता विकसित करने के लिए सही परिस्थिति बनाने के लिए आपको एक प्रक्रिया से गुजरना होगा और वह है अध्यात्म संस्कार साधना।

संस्कारों का वर्गीकरण

भारतीय परम्परा में ऋषियों और साधुओं ने संस्कारों के विचार देकर उन्हें विभिन्न श्रेणियों में रखा। इनमें से कुछ संस्कार उन चार आश्रमों से संबंधित हैं, जिनसे व्यक्ति अपने जीवन में गुजरता है।

ब्रह्मचर्य आश्रम में शिक्षा की पूर्णता का अनुभव कराने में सहायक कुछ विशेष संस्कार दिए जाते हैं। गृहस्थ आश्रम में आपको जो संस्कार मिलते हैं, वे आपको अपने गृहस्थ और सामाजिक जीवन को उच्चतम रचनात्मकता के साथ अनुभव करने में मदद करते हैं; वे आपको परिपक्वता, ज्ञान और मानसिक स्पष्टता के साथ परिस्थितियों का सामना करने की अनुमति देते हैं। ब्रह्मचर्य और गृहस्थ आश्रम में दिए गए संस्कार मुख्य रूप से कर्मकाण्डीय होते हैं, फिर भी उनमें आध्यात्मिक समझ का अंश रहता है। उन्हें पचहत्तर प्रतिशत भौतिक और कर्मकाण्डीय माना जा सकता है, शेष पच्चीस प्रतिशत अनुभव करने योग्य और आध्यात्मिक होते हैं।

फिर संस्कारों का एक समूह है जिसे वानप्रस्थ आश्रम में तैयार किया जाना चाहिए। ये आध्यात्मिक संस्कार हैं। अब आपको अपने पूरे व्यक्तित्व को फिर से शिक्षित करना होगा। जिस तरह आपने अपनी युवावस्था में भौतिक संसार में जीवित रहने के लिए खुद को ज्ञान और कौशल के साथ शिक्षित किया था, उसी तरह सेवानिवृत्ति के बाद आपको अपने जीवन को रचनात्मक, सकारात्मक और आध्यात्मिक बनाने के लिए खुद को अन्य आवश्यक गुणों से युक्त करना होगा। आपके जीवन की दिशा को भौतिक

से आध्यात्मिक की ओर मुड़ना है, इसलिए संस्कारों के एक नए समूह को लाकर सक्रिय करना आवश्यक है।

अंतिम आश्रम, संन्यास आश्रम में भी विशेष संस्कार होते हैं जो संन्यास की पूर्णता का अनुभव करने के लिए मानव स्वभाव में अनुकूल परिस्थितियों को पनपने देते हैं। हम स्वामी शिवानंद जी, स्वामी सत्यानंद जी और अन्य कई प्रबुद्ध व्यक्तियों के जीवन में उन स्थितियों को देख सकते हैं। हम उन विशेष गुणों को देख सकते हैं जिन्होंने उन्हें विशेष मनुष्य बनाया, और वे ही संन्यास संस्कार हैं।

भौतिक और आध्यात्मिक संस्कारों का यह समूह जीवन के विभिन्न चरणों में सही प्रवृत्तियों को पनपने की अनुमति देता है ताकि उस चरण की पूर्णता का अनुभव किया जा सके। ये व्यक्ति के विचार, वाणी, व्यवहार और कर्म में अभिव्यक्त होते हैं तथा उसे अध्यात्म पथ पर अग्रसर कर उसे आध्यात्मिकता की अनुभूति कराते हैं।

संस्कार और कर्म

आध्यात्मिकता सही संस्कारों को अभिव्यक्त करने का परिणाम है। यह विशेषकर तब प्रासंगिक होता है जब आप किसी वास्तविक आश्रम में रहते हैं। अगर आप घर पर अकेले रह रहे हैं तो आप अपनी मर्जी से रह सकते हैं। लेकिन जब आप एक बड़े समुदाय में रहते हैं, तो समायोजन और अनुकूलन की आवश्यकता आपको अपने स्वभाव और मन के साथ टकराव की ओर ले जाती है। उस समय नकारात्मक, हानिकारक और प्रतिबंधात्मक संस्कार सामने आते हैं और व्यक्ति के व्यवहार, समझ, कर्म और दृष्टि को बदल देते हैं। यही वह नकारात्मकता है जो हर किसी के भीतर संस्कार रूप में विद्यमान है। जीवन में नकारात्मकता केवल परिस्थितियों के कारण नहीं होती; आपके संस्कार भी आपकी प्रतिक्रियाओं को निर्देशित करते हैं।

आप जीवन की नींव, अर्थात् कर्म के साथ पैदा हुए हैं। आपके कर्म आपके जीवन की आधारशिला हैं जिसपर आप अपना घर बनाते हैं। घर बनाने के लिए आप जिन ईंटों का उपयोग करते हैं वे संस्कार हैं। यदि आप अच्छी गुणवत्ता वाली ईंटों का उपयोग करते हैं तो घर लंबे समय तक टिकेगा। अगर आप कच्ची ईंटों का उपयोग करते हैं तो घर असुरक्षित होगा। सब कुछ उस सामग्री की गुणवत्ता पर निर्भर करता है जिसका आप अपना घर बनाने के लिए

उपयोग करते हैं। अगर सामग्री अच्छी है तो घर अच्छा और मजबूत होगा। यदि सामग्री अच्छी नहीं है तो घर कमजोर होगा; वह किसी भी समय, किसी भी छोटी-मोटी दुर्घटना से ढह सकता है और आपको चोट पहुँचा सकता है।

संस्कार जीवन के निर्माण-खंड हैं। अपने आप को देखें और समझें कि जिस व्यक्तित्व के घर में आप रह रहे हैं, उसे बनाने के लिए आपने किस प्रकार के निर्माण-खंडों का उपयोग किया है। प्रसन्न, संतुष्ट, सकारात्मक, रचनात्मक, आशावादी, प्रेरित? या सुस्त, चिंतित, चिड़चिड़ा और अनर्गल बकवास करता नकारात्मक व्यक्तित्व? अपने आप से पूछें, दिन के चौबीस घंटों में, आप कितने घंटे अच्छे हैं और कितने घंटे बुरे। आप कब वास्तव में भले हैं और कब आप किसी दूसरे के बारे में बुरा सोचते हैं? यह आपको बताएगा कि आपने अपने घर के निर्माण में किस प्रकार की सामग्री का उपयोग किया है। यह आपको उन संस्कारों के बारे में बताएगा जिन्होंने आपके स्वभाव का निर्माण किया है। क्या वे अहंकार, असुरक्षा, भय, मांग और कामना से भरे हैं? या उनमें समझ, शांति और करुणा भी है? आपके संस्कार आपके स्वभाव का निर्माण करते हैं।

अपना घर साफ करें

अगर आप एक अच्छा घर बनाते हैं और फिर उसमें रहना चाहते हैं, तो आपको पहले क्या करना होगा? सबसे पहले आपको मलवा हटाना होगा, फिर आपको छोटे-बड़े ढेले और धूल हटाने के लिए झाड़ू लगाना होगा। फिर बारीकी से झाड़ू लगाकर फर्श को गीले कपड़े से पोंछना होगा। आपको अपना घर चार-पाँच बार साफ करना होगा, तभी आप उसे साफ और रहने लायक कह सकेंगे। इसका मतलब है कि घर में प्रवेश करने से पहले शुद्धि आवश्यक है। इसी तरह मन में भी शुद्धि होनी चाहिए। इसलिए राजयोग के यम-नियमों में पहला नियम शौच है। यह सफाई और शुचिता बाहरी भी है और आंतरिक भी।

घर की सफाई करने के बाद आप क्या करते हैं? अब आप फर्नीचर लाते हैं और उसे अपनी योजना के अनुसार रखते हैं। बिस्तर यहाँ होगा, मेज वहाँ होगी, कुर्सी वहाँ होगी। जब फर्नीचर का सामान आ जाता है तो अगला चरण सजावट का होता है। वहाँ एक तस्वीर लगाई जाती है, फूलदान बीच में रखा जाता है, पर्दों को बदला जाता है ताकि उनका रंग मेल खाए। सजावट पूरी

हो जाने पर आप संतुष्ट होते हैं और कहते हैं, 'हाँ, अब मुझे यह पसंद है। मैं यहाँ रह सकता हूँ।'

इसी तरह आन्तरिक सफाई का पहला चरण अपने मन से सम्बन्धित है – मन में शुचिता, पवित्रता, निर्मलता, विमलता और कोमलता लाना। फर्नीचर रखने की व्यवस्था सद्विचार, सद्व्यवहार और सत्कर्म का विकास है। जिस तरह आपको अच्छी तरह से रहने के लिए फर्नीचर के तीन मुख्य सामान – बिस्तर, मेज और कुर्सी जरूरी हैं, उसी तरह जीवन के तीन आवश्यक पहलू हैं – सत्कर्म, सद्व्यवहार और सद्विचार।

मन की शुचिता प्राप्त करने के बाद सकारात्मकता विकसित होती है जो आपके विचारों, व्यवहार और कर्मों में परिलक्षित होती है। आप सकारात्मकता को जीना और अभिव्यक्त करना शुरू करते हैं। तब जाकर सजावट होने लगती है, जिसे सद्भावना कहा जाता है। जब आपके पास सही भावनाएँ और इरादे होते हैं तो आप हर किसी से सही तरीके से, सही रवैये के साथ जुड़ सकते हैं। अगर आपको अपने इरादे के बारे में पता नहीं या आपका कोई गलत इरादा है, तो कुछ भी सही नहीं होगा। वास्तव में, अगर इरादा गलत है तो जो सही है वह भी गलत होने लगेगा। यह भावना और इरादा ही है जो आपको दूसरों से, परिवार, मित्र, समाज, गुरु और भगवान से जोड़ता है। इसलिए, जितनी अधिक यह भावना विकसित और शुद्ध होती है, उतना ही

आपका जीवन उदात्त, विस्तृत और आध्यात्मिक होने लगता है। जैसे पहले भौतिक और सांसारिक गुण आपके सामाजिक जीवन के स्वाभाविक अंग थे, वैसे ही अब आध्यात्मिक गुण आपके आध्यात्मिक जीवन का स्वाभाविक हिस्सा बनने लगेंगे। यह आपका अपना रचनात्मक योगदान होगा।

आश्रम का अर्थ

भारतीय अध्यात्म में निष्क्रिय एकान्तवास या अलगाव की अवधारणा नहीं है। यहाँ तक कि जब आप एकांत में रहते हैं तो भी यह किसी आश्रम का अंग माना जाता है। जीवन के विभिन्न चरणों – ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ या संन्यास में आप जो भी प्रयास करते हैं उसे आश्रम के रूप में जाना जाता है।

आश्रम का क्या अर्थ है? शांत, निष्क्रिय समुदाय नहीं, बल्कि एक जीवंत, गतिशील समुदाय। श्रम का तात्पर्य मेहनत करने से, किसी काम में व्यस्त होने से है, और इसलिए आश्रम एक ऐसी जगह है जहाँ आप निरंतर संलग्न रहते हैं। वह संलग्नता उस संस्कार को परिभाषित करती है जिसे उस विशेष आश्रम के लिए विकसित करने की आवश्यकता है। बाकी सब कुछ उस आश्रम के संस्कारों के विकास के लिए अनुकूल होना चाहिए ताकि आप जीवन के प्रत्येक चरण में विकास का पूरी तरह से अनुभव कर सकें।

इस प्रकार आश्रम, चाहे वह जीवन का एक चरण हो या कोई विशेष स्थान, हमेशा नए और बेहतर संस्कार विकसित करने के पुरुषार्थ को दर्शाता है। इसी वजह से यह प्रत्येक व्यक्ति के लिए निरंतर गतिशीलता और कर्मठता का स्थान है। गुरु को सक्रिय होने की आवश्यकता नहीं, बल्कि वहाँ मौजूद हर व्यक्ति को सक्रिय और जीवंत होना चाहिए। गुरु कमरे में चुपचाप रह सकता है। पहले के समय ऐसा ही होता था। ऋषि, साधु, तपस्वी और त्यागी बिना किसी विक्षेप के अपनी साधना शांतिपूर्वक किया करते थे, और उनके शिष्य उनके आस-पास सक्रिय रहते थे। यह हमेशा से हमारी संस्कृति रही है।

आश्रम एक ऐसा स्थान है जहाँ आप अपने चिंतन, व्यवहार और कर्मकौशल को बेहतर बनाने का निरंतर प्रयास करते हैं। लोग इसमें कितना सफल हो पाते हैं, यह निर्भर करता है उनके संस्कारों पर। कुछ थोड़े से कदम ही चल पाते हैं, कुछ अनेक कदम आगे बढ़ जाते हैं, कुछ जीवनपर्यन्त पथ पर निरंतर चलते रहते हैं।

– 20 जनवरी 2018, गंगा दर्शन

दान सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सूचना

आश्रम के लिए दान राशि केवल निम्नलिखित श्रेणियों के अन्तर्गत स्वीकार की जाएगी –

1. **सामान्य दान**
   जो बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन को दिया जा सकता है और जिसका उपयोग यौगिक गतिविधियों के विकास एवं संवर्द्धन के लिए किया जाएगा।

2. **मूलधन निधि के लिए दान**
   बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन की मूलधन निधि के लिए। **मूलधन निधि** से प्राप्त ब्याज राशि का उपयोग संस्था/न्यास की सभी गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

3. **सी.एस.आर. दान**
   जिसका उपयोग सी.एस.आर. गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

इसलिए भक्तों से निवेदन है कि वे केवल उपर्युक्त श्रेणियों के अन्तर्गत अपनी दान राशि भेजें।

बिहार स्कूल ऑफ योग को दान SB Collect Online Donation Facility के माध्यम से इस **QR code** को स्कैन करके दिया जा सकता है।

आप चेक, डी.डी. अथवा ई.एम.ओ. द्वारा भी दान दे सकते हैं जो **बिहार स्कूल ऑफ योग**, **बिहार योग भारती**, **योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट** या **योग रिसर्च फाउण्डेशन** के नाम से हो और मुंगेर में देय हो।

दान राशि के साथ एक पत्र संलग्न रहे जिसमें आपके दान का प्रयोजन, डाक पता, फोन नम्बर, ई-मेल और PAN नम्बर स्पष्ट हों।

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

योग चक्र 7 – राजयोग का सम्पूरक, भक्तियोग

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

पृष्ठ 52, ISBN: 978-93-48677-85-3

इन सत्संगों का विषय राजयोग और भक्तियोग था, जो षडंगीय योग चक्र के दो महत्त्वपूर्ण अंग हैं। स्वामीजी ने समझाया कि किस प्रकार राजयोग और भक्तियोग एक-दूसरे के सम्पूरक हैं, इसलिए इन्हें अलग-अलग प्रणालियों के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। उन्होंने साधकों को इन दोनों योगशाखाओं की समानांतर यात्रा करायी है ताकि वे मन और भावनाओं के बीच सामंजस्य लाने की प्रक्रिया का गहराई से अनुभव कर सके।

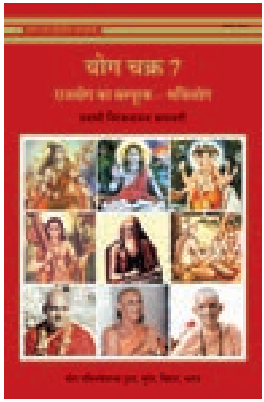

नया प्रकाशन

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें –
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
दूरभाष : 9162783904, 9835892831

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा

वेबसाइट और एप्प

BIHAR YOGA

www.biharyoga.net

बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट पर बिहार योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

सत्यम् योग प्रसाद

बिहार योग परम्परा के समस्त ऑडियो, वीडियो तथा पुस्तक प्रकाशन प्रसाद रूप में *satyamyogaprasad.net* वेबसाइट पर उपलब्ध हैं जिन्हें इस QR code को स्कैन करके देखा जा सकता है। ये *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

यौगिक जीवनशैली साधना

स्वस्थ जीवन हेतु रचित यह कार्यक्रम *biharyoga.net* तथा *satyamyogaprasad.net* पर उपलब्ध है।

योगा एवं योगविद्या ऑनलाइन

www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

अन्य एप्प (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)

- योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की लोकप्रिय पुस्तक, ए.पी.एम.बी. अब सुविधाजनक एप्प के रूप में उपलब्ध है
- *Bihar Yoga* एप्प साधकों के लिए प्राचीन और नवीन यौगिक ज्ञान आधुनिक ढंग से पहुँचाता है
- *For Frontline Heroes* एप्प कोरोनावायरस के विरुद्ध अभियान में संघर्षरत कार्यकर्ताओं के लिए सरल योग अभ्यास प्रस्तुत करता है जो महामारी से उत्पन्न तनाव को सम्हालने में सहायक हैं

• Registered with the Registrar of Newspapers, India
Under No. BIHHIN/2002/6306

ISSN 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2025

बिहार योग विद्यालय योगविद्या प्रशिक्षण

जनवरी–दिसम्बर	*आश्रम जीवन प्रशिक्षण*
सितम्बर 22–30	*राज योग एवं भक्ति योग प्रशिक्षण*
अक्टूबर 3–11	*हठ योग एवं कर्म योग प्रशिक्षण*
नवम्बर 1–15	*प्रगतिशील योग विद्या प्रशिक्षण*
नवम्बर 16–जनवरी 30 2026	*संन्यास अनुभव (राष्ट्रीय/अन्तरराष्ट्रीय साधकों के लिए)*

बिहार योग भारती योगविद्या प्रशिक्षण

नवम्बर 1–दिसम्बर 31	*द्विमासिक यौगिक अध्ययन (अंग्रेजी)*

मासिक कार्यक्रम

प्रत्येक शनिवार	*महामृत्युंजय हवन*
प्रत्येक 4, 5 एवं 6 तारीख	*गुरु भक्ति योग*
प्रत्येक 12 तारीख	*अखण्ड रामचरितमानस पाठ*

अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए तथा योगविद्या पत्रिका को ऑनलाइन देखने के लिए बिहार योग की वेबसाइट – biharyoga.net पर जायें या बगल के QR code को स्कैन करें